APRIL, 2001

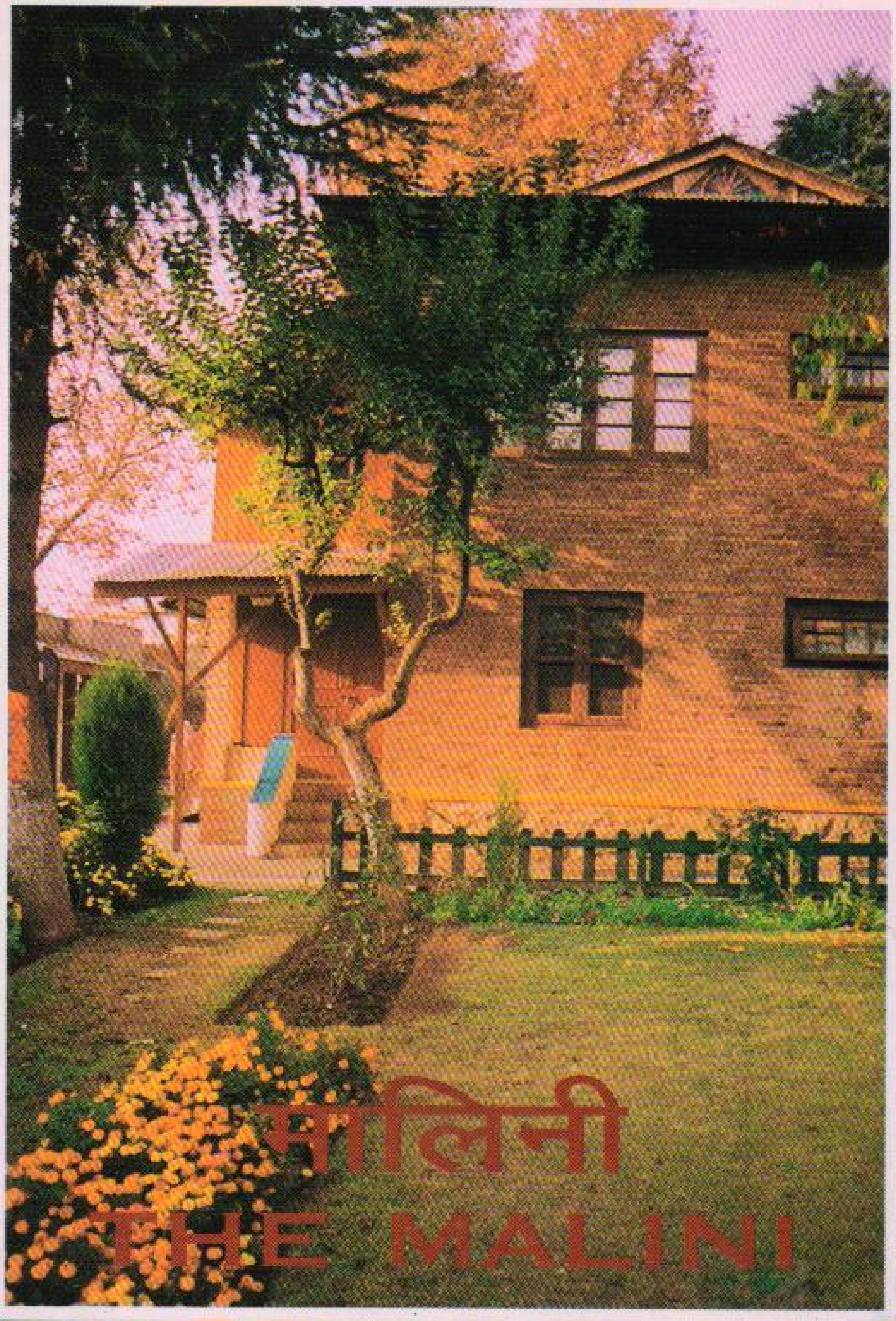

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. VII | NO. I | ISSUE XXIV
APRIL, 2001

ह्रीं

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी।।

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

अकलित सुख दुःखंसर्व भोगैरुपेतंविगलित भवपाशंभावनातीतरूपम्।
बहुविधधृतरूपं ध्यानयोगाद्यगम्यं भज निजगुरुपादं पूर्णवाञ्छो भव त्वम्।।

The Lotus feet

of

Bhagwan Satguru Deo

Shri Ishwar Swarup Ji Maharaj

सुख दुःख कलनासे दूर सब भोगों से जो भरपूर। जग के पाश हो जाते चूर दिखता न जिसका उज्ज्वल नूर
नानारूपों का आधार ध्यान योग सारे बेकार भजगुरुचरण जो जीवनसार होगा तेरा बेड़ा पार।।

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)
Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan
(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Branch Office :
R-5/D Pocket, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Tel. : 6958308
Telefax : 6955611

April, 2001
Price : Rs. 20.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

	संपादक की लेखनी से		4
1.	Śiva Sūtras	*Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja*	6
2.	Meditation	*Shin Shiva Svayambhūḥ*	*11*
3.	Kinds of Speech	*Dr. B. N. Pandit*	*18*
4.	A Re–appraisal of Lal Ded	*Prof. A. N. Dhar*	22
5.	भगवते रमणाय (ॐ) नमः	*स्वामी लक्ष्मण जू महाराज*	25
6.	श्री गुरवे नमः	*आचार्य रामेश्वर झा*	26
7.	स्मृति-संजीवनी	*सुश्री प्रभादेवी जी*	30
8.	शैवदर्शन के वातायन से	*प्रो. नीलकंठ गुर्टू*	31
9.	श्री तन्त्रालोकविवेके जयाद्या रुद्राः	*प्रो. मखनलाल कुकिलू*	33
10.	श्री रुद्रस्तुतिः	*प्रो.मखनलाल कुकिलू*	37
11.	From Ashram Desk	*Administrative office*	47
12.	Ashram Calendar	*Administrative office*	48

संपादक की लेखनी से

सद्गुरु महाराज की जन्मजयन्ती का यह मालिनी विशेषांक मालिनी के पाठकों व समालोचकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमारा अन्तस्तल अदम्य भावना और उत्साह से भावविभोर हो रहा है। आज का यह महान पर्व सद्गुरुदेव की अहेतुकी कृपा का आगार है। आज के ही दिन, भक्ति के इच्छुक भक्ति को, आध्यत्मिक जागृति कामी पूर्णाहन्ता को, मुक्तिकामी मुक्ति को, भौतिक सुखाकाङ्क्षी विविध ऐश्वर्यों को, नानाशास्त्राभ्यासी पार्यन्तिक तत्त्व को, धार्मिक जनता धर्मोन्नति को और गुरुकृपावगाही सद्गुरु कृपा को, अनायास ही पाकर कृतकृत्य होते हैं। ऊँची से ऊँची योग की स्थिति में समाविष्ट रहने वाले, मनवाणी से अगम सहज स्वरूप वाले, भावसमाधियों में चारों ओर मदमत्त होके ताण्डवनृत्य करने वाले, कृपावारिधि के विमल छीटों से घनीभूत मलों के परतों को छितरने वाले सद्गुरु महाराज आज के दिन मुक्तहस्त देने को उद्यत हैं। जो सद्गुरुदेव आत्मदर्शनकराके जीव के अहंग्रह को शान्त करते हैं, जो सद्गुरुदेव ममतारूपी बेड़ियों में जकड़े जीव को उनसे मुक्त करते हैं, जो सद्गुरुदेव प्रारब्धकर्मानुसार आवागमन के चक्कर में भ्रमित प्राणी को भी आवागमन से छुड़ा देते हैं जो सद्गुरुदेव जीव की उलझी हुई बुद्धि तथा भ्रान्त मन को उलझन से परे करके योग के सामर्थ्य से स्वच्छ बनाते है, जो सद्गुरुदेव इन्द्रिय रूपी चोरों से बेहाल बने हुए जीव को चोरों के चुंगल से छुड़ा लेते हैं और जो सद्गुरुदेव अपने मधुर वचनों से जीव को विभ्रम से ऊपर उठा देते हैं; उसी सद्गुरुदेव के लिए आज के इस पावन पर्व पर हमारा शतशः नमन हो। हे महामहिम! हमारे हृदय में आपकी छवि तब तक विराजमान रहे जब तक संसार में चन्द्रमा और तारे हैं। हे योगार्णव कर्णधार! 'आप के अनन्य भक्त तथा सत्शिष्य दिव्य ज्ञान की ज्योति से सदा प्रज्ज्वलित रहें' ऐसे आशीष से आज हमें कृतकृत्य करो। हे उद्धारक! मन मन्दिर में विराजमान आपकी परमानन्दमयी दिव्यमूर्ति का ध्यान, दर्शन व मनन करके हम अहर्निश आनन्द मग्न रहें ऐसा शुभाशीर्वाद आज देकर हमें सौभाग्यशाली बनावो।

जयगुरुदेव

आज का यह पुनीत दिन दिल्ली वासियों के लिए चिरस्मरणीय रहेगा क्योंकि आज पहिली बार दक्षिण दिल्ली स्थित सरिता विहार निर्माणाधीन आश्रम भवन में सद्गुरु महाराज का जन्मदिन बड़े हर्षोल्लास के साथ हमने मनाया। प्रातःकाल से ही दिल्ली तथा दिल्ली के आसपास के तथा दूरस्थ प्रदेशों से भक्त जन सद्गुरु पूजा में सम्मिलित होने के लिए पधारने लगे। आश्रम भवन का परिसर सद्गुरु पूजा के स्तोत्रों, भजनों तथा महिमागीतों

से गूंज रहा था। पांच सौ से भी अधिक भक्तजन, सद्गुरु प्रसाद प्राप्ति से महिमान्वित होकर अपने को धन्य समझने लगे। आश्रमभवन के निर्माण कार्य में अधिक रफ़तार लाने के लिए जिन दानियों ने इस अवसर पर मुक्तहस्त दान दिया उन दानवीरों के हम अतीत कृतज्ञ हैं। उनके इस सत्कार्य के परिणामस्वरूप आश्रम भवन का रुका हुआ निर्माण कार्य पुनः शीघ्र आरम्भ होगा ऐसी पूर्ण आशा है।

यह अतीव हर्ष का विषय है कि रविवासरीय पूजा के कार्यक्रम का आयोजन हम पिछले चार महीनों से यथाविधि इसी निर्माणाधीन आश्रम भवन में कर रहे हैं। भक्त जन तथा शिष्यगण समुत्साह से इस पूजा में सम्मिलित होकर सद्गुरु कृपाभागी बन जाते हैं और सिद्ध हुई मनोकामना के फलस्वरूप प्रसन्नचित्त लौटते हैं।

राजधानी दिल्ली की तरह ईश्वराश्रम श्रीनगर कश्मीर में सद्गुरु महाराज का जन्म दिन धूमधाम से मनाया गया। हर साल की तरह इस वर्ष भी जनकल्याणार्थ अद्वितीय यज्ञ रचा गया। जिसकी पूर्णाहुति में सैकड़ों भक्त व शिष्यगण सम्मिलित हुए। प्रतिकूल परिस्थितियों के होने पर भी दो सौ से भी अधिक लोगों ने यज्ञ प्रसाद प्राप्ति से अपने को लाभान्वित किया।

ईश्वर आश्रम भवन महेन्द्र नगर जम्मू में सबसे बड़ा जनसमुदाय सद्गुरु महाराज की पूजा आरती में सम्मिलित हुआ। चार हजार से भी अधिक भक्तजनों ने श्रद्धा व प्रेम के साथ इस महोत्सव के अन्त में नैवेद्य करके आयोजित संगीत सभा का भी आनन्द लूटा। इस आश्रम भवन के प्रबन्धक तथा कार्यकर्ता धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने प्रेम, शान्ति व उत्साह के साथ लोगों की सेवा परिचर्या करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी।

ईश्वराश्रम परिवार के लोग तथा सभी भक्तजन यह पढ़कर प्रसन्न होंगे कि श्री एम. के. काचरू के स्थान पर श्री ए.के. गंजू जी ईश्वर आश्रम दिल्ली केन्द्र के अप्रेल 2001 से सर्वसम्मति से अध्यक्ष बनें। हमें आशा है इनके इस पदाधिग्रहण से दिल्ली केन्द्र के रगों में नये व ताज़े रक्त का संचार होगा और दिनप्रतिदिन इसकी प्रगति में चार चांद लग जायेंगे। सोपुर कश्मीर निवासी कर्मयोगी स्वर्गीय श्री शुकदेव जी गंजू के सुपुत्र श्री ए.के.गंजू जी एक कुशल कार्यकर्ता, समाजसेवी तथा उदार हृदय वाले हैं। इन्होंने अपने कुशल सुदृढ़ हाथों में जो दिल्ली आश्रम की डोर संभाली वह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। हमारी शुभकामनायें सदा उनके साथ हैं।

समस्त ईश्वराश्रम परिवार को सद्गुरु महाराज की जन्म जयन्ती पर हार्दिक शुभकामनायें।

वैशाख कृष्ण द्वादशी

प्रो.मखनलाल कुकिलू

20 अप्रेल, 2001शुक्रवार

ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja

(continued from last issue)

पञ्चमन्त्रगता देवि सद्य आदिरनुक्रमात्।
तेन पञ्चविधा प्रोक्ता ज्ञातव्या सुरनायिके॥
स्वरद्वादशगा देवि द्वादशस्था उदाहृता।
अकारादिक्षकारान्ता स्थिता पञ्चाशता भिदा॥
हृत्स्था एकाणवा प्रोक्ता कण्ठे प्रोक्ता द्वितीयका।
त्रिराणवा तु ज्ञातव्या जिह्वामूले सदा स्थिता॥
जिह्वाग्रे वर्णनिष्पत्तिर्भवत्यत्र न संशयः।
एवं शब्दस्य निष्पत्तिः शब्द व्याप्तं चराचरम्॥

पञ्चमन्त्रगता–she pervades the five mantras the five faces, देवि–O goddess, सद्य आदिरनुक्रमात्–sadyojāta etc. successively, (five faces are–सद्योजात (sadyojāta) तत्पुरुष (tatpuruṣa) ईशान (īśāna) वामदेव (vāmadeva) अघोर (aghora) तेन–therefore, पञ्चविधा–in five ways, प्रोक्ता–is said, ज्ञातव्या–to be realized, सुरनायिके–O head of all the gods! स्वरद्वादशगा–in twelve vowels, देवि–O goddess, द्वादशस्था–existing in twelve, उदाहृता–is said, (i.e. twelve vowels are – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः) अकारादि क्षकारान्ता–from अ vowel to क्ष- ending consonant, स्थिता पञ्चाशता भिदा–she exists in fifty forms (The Sanskrit alphabet from अ to क्ष consists of fifty letters) हृत्स्था एकाणवा प्रोक्ता–in the heart, she is said to be of one atom, कण्ठ–in throat, प्रोक्ता द्वितीयका–she is said to be of two atoms, त्रिराणवा–of three atoms, ज्ञातव्या–should be known, जिह्वामूले–in the root of the tongue, सदा स्थिता–always situated (their reference is towards three kinds of speech known as paśyantī (पश्यन्ती) madhyamā (मध्यमा) and vaikharī (वैखरी). Paśyanti is that form where the division between word and object has not yet arisen, this is the state of vision. It is why it is called paśyanti. She consists of one atom and rises in the heart. In madhyamā state the

division between the word and object has started but is not evident yet. She occupies middle state between paśyanti and vaikharī it is why it is called madhyamā. She is pushed out with two atoms and exists in the throat. Vaikhari is third stage of speech. Vikhara means body. Body is the seat of gross speech. She is pushed out with three atoms and resides always in the root of the tongue. जिह्वाग्रे–in the front of the tongue, वर्णनिष्पत्तिः–successful production of letters, भवत्यत्र न संशयः–there is no doubt about this, एवं शब्दस्य निष्पत्तिः–in this way the production of words, शब्द व्याप्तं चराचरं–all animates and inanimates are pervaded by words.

There are five secret states of self that rise from this Kuṇḍalinī. Sadyojāt, Tatpuruṣa, Īśāna. Vāmadeva and Aghora are five faces of Lord Śiva which appear from Kuṇḍalinī and because of these five faces Lord Śiva acts in the world. So Lord Śiva is dependent on Kuṇḍalinī. Twelve vowels also rise from the divine mother Kuṇḍalinī and fifty letters also rise from the divine mother. Now take three forms of speech, supreme, medium and inferior known as paśyanti, madhyamā and vaikharī. Supreme speech paśyantī rises in the heart. It consists of one aṇu (atom) that means it is evident with one attempt. In throat madhyamā speech rises and tongue is the centre of vaikharī speech. When something is told first we have to take it out from heart. There is no differentiation of letters, but there is only force which pushes our thought to throat, it is why madhyamā speech is called of two aṇus (atoms) i.e. with two attempts it is pushed out to throat. And third speech is vaikharī which is always situated in the root of the tongue and it is called of three aṇus (atoms) in the tongue, this whole universe resides on sound and that sound is carried from that soundless centre of Kuṇḍalinī.

इत्यादिना ग्रन्थेन – परभैरवीय परावाक् शक्त्यात्मक मातृका अत एव ज्येष्ठा-रौद्री-अम्बाख्य शक्ति प्रसर संभेद वैचित्र्येण सर्ववर्णोदयस्य उक्तत्वात्, वर्ण संघट्टना शरीराणांमन्त्राणां सैव भगवती व्याख्यातरूपा विद्याशरीर सत्ता रहस्यम् इति प्रदर्शितम्। प्रत्यागमं च मातृका मालिनी प्रस्तार पूर्वकं मन्त्रोद्धार कथनस्य अयमेव आशयः। रहस्यागम सार संग्रहरूपत्वात् शिवसूत्राणां आगमसंवादे भरः अस्माभिः कृतः इति नास्मभ्यं असूयितव्यम्। एवमपि संवादिते आगमे यदि रहस्यार्थो न बुद्ध्यते, तस्मात् सद्गुरुसपर्या कार्या। एष च सूत्रार्थः-

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञ बलशालिनः।

प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्॥

तत्रैव संप्रलीयन्ते शान्तरूपा निरञ्जनाः।

सहाराधक चित्तेन तेनैते शिवधर्मिणः॥
इत्यनेन कारिकाद्वयेन स्पन्दे दर्शितः॥

इत्यादिना ग्रन्थेन—by all these statements of the Tantrasadbhava प्रदर्शितं—it is evident, that मातृका Mātṛkā परभैरवीय परावाक् शक्त्यात्मक—is form of Parāvāk who is the supreme power of Bhairava, अतएव—therefore, ज्येष्ठा रौद्री अम्बाख्य शक्ति—Jyeṣṭhā, Raudrī and Ambā Śakti प्रसर—extension of संभेद वैचित्र्येण—because of the various forms caused by the union, सर्ववर्णोदयस्य उक्तत्वात्—already explained that all letters take their shape, वर्ण संघट्टना शरीराणां—which are embodied in the union of letters, मन्त्राणां—of all Mantras, सैवभगवती व्याख्यातरूपा विद्याशरीर सत्ता—that Supreme I consciousness as defined earlier, रहस्यम्—the secret, प्रत्यागमं च—in each and every Āgama, अयमेव आशयः—this is the crux of मन्त्रोद्धार कथनस्य—of the statement that Mantras rise, मातृका मालिनी प्रस्तार पूर्वकं—by means of the extension of Mātṛkā and Mālinī, रहस्यागम सार संग्रहरूपत्वात् शिवसूत्राणां because Śiva Sūtras are actually the secret and essential thoughts of Lord Śiva आगमसंवादे भरः अस्माभिः कृतः—so we have laboured in giving references to make you understand from so many Tantras in this book, इति नास्मभ्यं असूयितव्यं—you should not envy एवमपि संवादिते आगमे यदि रहस्यार्थो न बुद्धयते—thus giving references of so many Tantras to make you understand the divine mother Kuṇḍalinī, if you have not been able to understand it, तस्मात् सद्गुरु सपर्या कार्या—then you should take the refuge of master's feet. This is narrated in Spandakārikā also in the following Kārikā.

So supreme energy of supreme speech is the source of all these speeches. Therefore all these letters rise from that supreme centre of energy of God consciousness of divine mother. All mantras which are recited by an aspirant get strength and superiority from that supreme god-consciousness of Kuṇḍalinī. It is why Mātṛkā - the systematic system of letters from अ to क्ष (A to Z) and Mālinī - the irregular or orderless system of letters from न to फ (N to Pha), too rise from divine mother Kuṇḍalinī. Because Śivasūtras are actually the secret and essential thoughts of Lord Śiva, so we have given references from so many Tantras, in this book in order to make you able to understand the divine mother Kuṇḍalinī. You should not get worry or you should not envy if you have not been able to understand it then you

should take the refuge of Master's feet. This is narrated in Spandakārikā also in the following verses:–

The incantations on catching hold of that strength, get endued with the power of omniscience and perform their functions just as the senses of the embodied do. They together with the mind of their practisers, get absorbed in that alone, being peaceful and purged of impurities. Hence these incantations possess the real nature of Lord Śiva.

येषां तु एवंविधमेतन्मन्त्रवीर्यं प्रोक्तमहाह्रदानुसंधानौपयिकमपि परमेश्वरेच्छात एव न हृदयङ्गमीभवति; अपितु आनुषङ्गिक मात्र बिन्दुनादादिकलाजनितासु मितसिद्धिषु चित्तं रोहति तेषाम्–

येषांतु—yogis to whom, एवंविध एतत् मन्त्रवीर्यं—this mantravīrya–supreme I consciousness, प्रोक्त—already said, महाह्रद—Great ocean, अनुसंधान—intensive awareness of the essential reality, औपयिकमपि—a means, परमेश्वरेच्छात एव—by the opposite will of Lord Śiva, that is will of, तिरोधान—(tirodhāna) concealment not, अनुग्रह—(anugraha) favour , न हृदयङ्गमीभवति—some unfortunate men do not realize this I consciousness; अपितु—on the contrary, चित्तं रोहति—they satisfy their mind, मितसिद्धिषु—in limited Yogic powers, which are, जनितासु—attained by,आनुषङ्गिक—unimportant, मात्र—only, बिन्दुनादादिकला—bindu, nāda etc. Śakti, तेषां—for them–

To Yogis in whom this supreme I consiousness, which is a way to find out the great ocean already explained, is not realized by the opposite will of Lord Śiva, that is due to the concealing energy of Lord Śiva, but on the contrary they satisfy their mind by limited yogic powers, which are attained only by bindu, nāda etc. Śakti although this mantravīrya (मन्त्रवीर्य) is got out in existence by meditating on supreme heart of I consciousness. (Svāmī Ji endorses this fact and says, this is a fact if you meditate on supreme heart of I consciousness the mantra vīrya comes in its real existence but) by the opposite will of Lord Śiva, that is will of Tirodhāna (concealment) not Anugraha (अनुग्रह–favour) some unfortunate men do not realize this supreme I consciousness. On the contrary they satisfy their mind by limited yogic powers got from bindu, nāda etc. Śakti. For them this next sūtra explains–

गर्भे चित्तविकासोऽविशिष्ट विद्यास्वप्नः॥ ४॥

Garbhe cittavikāso'viśiṣṭa vidyāsvapnaḥ //

When a Yogi's mind remains satisfied in cosmic powers, his Samādhi is as good as ordinary dreaming state.

गर्भः=अख्यातिः=महामाया; तत्र=तदात्मके मितमन्त्रसिद्धि प्रपञ्चे, यः चित्तस्य विकासः=तावन्मात्रे प्रपञ्चे संतोषः; असौएव अवशिष्टा=सर्वजन साधारण रूपा; विद्या=किञ्चिद्ज्ञत्वरूपा अशुद्धविद्या; सैव स्वप्नः=भेदनिष्ठः विचित्रः विकल्पात्मा भ्रमः। गर्भः=अख्यातिः=महामाया–means that expansion of body of energy of illusion–माया, तदात्मके–in that expansion of body of the energy of illusion, मितमन्त्र सिद्धिप्रपञ्चे–the limited yogic powers attained by powers of mantra, यश्चित्तस्यविकासः तावन्मात्रे प्रपञ्चे संतोषः –satisfaction of mind by attaining those limited powers, असौ एव–this is, अविशिष्टसर्व जनसाधारण रूपा –merely, a form known to all, विद्या किञ्चिज्ज्ञत्वरूपा अशुद्धविद्या–knowledge which is impure, because it is instrumental in imparting limited sort of knowledge, सैव–that very knowledge स्वप्नो–dream, भेदनिष्ठो–established on differentiatedness, विचित्रो–strange, विकल्पात्मा–imaginatory, भ्रमः –confusion.

In that expansion of body of the energy of the illusion, the limited yogic powers render satisfaction of mind to yogi, but this is impure knowledge, because of its incompleteness and being common to all this is only a dream, a confusion full of strange imaginations established on differentiatedness. तदुक्तं पातञ्जले as is said in Yogasūtra of Pātañjali—

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः

These limited powers cause obstructions in samādhi (meditation) but are known as siddhis (perfections) in vyutthāna (external experience)

इति तदेतत् इत्यनेन दर्शितम् –This very point has been elucidated in the following śloka of Spandakārikā:—

अतो बिन्दुरतो नादो रूपमस्मादतो रसः।
प्रवर्तन्तेऽचिरेणैव क्षोभकत्वेन देहिनः॥

From it the light, from it the sound, from it the form and from it the taste flow forth immediately in the case of a yogi in whom the attributions of I ness, to the gross and subtle form of body, has not vanishad.

to be continued

MEDITATIONS–EXPERIENCE OF A SHIVA YOGI

Shin Shiva Svayambhu

Sit upright as well as you can, sit in the ray, the pillar, the eternal lingam without end in the heights, without end in the depths and give your body the order not to move. Try to feel the uppermost part of the head as if a beautiful light sun and moon—music and silence—everything and nothing as if a beautiful light would come from the highest. Go with your climbing consciousness through the roof of the house, through the clouds, through the stars upwards and always when you have the impression that you can't go any higher then think there would-be a star, the finest star, directly in the zenith. Climbing higher, think, to the highest point of the highest mountain and this highest point is your head and from this highest mountain you go to the highest star in the zenith and higher and higher. Bind yourself with a diamond silk thread of consciousness to the highest, beyond the highest, beyond the highest. And this diamond silk ray comes directly through the middle of the head–don't move, don't allow the body to move–and this fine silk ray comes into the middle of the head, touching there a beautiful light and breathing centre–think of the finest star you have seen in the sky–and the pillar of light, silver and gold, sun and moon, honey and milk goes in the vertical through the whole body - feel it in the throat coming in the heart, the breast, vertical in the navel and in the seat. Feel Sahasrara, feel Muladhara - sitting in a pillar of light, transparent, beautiful, diamond and blue, Yellow and white, white, white, white, brilliant white, indescribable white - and going through Muladhara into the depths, through the ground, through the continents, down into the fire of the earth, into the heat to the holy land in the middle of the earth. Now feel the tension between the highest and the power in the depths, deeper than the deepest. And in the centre of this vertical axis from the highest to the deepest, where even Vishnu and Brahma couldn't find the end or the beginning - in the very centre you see, you feel, you have, you are this diamond silk thread of consciousness - concentrate, concentrate, concentrate, but be without concentration-will, but not will as you know it. Now in the middle of the head, behind the beginning of the nose, behind the centre between the eyebrows, like in the deepest cave.

Now for a little while movement of the body is allowed, so bow a little and come up, five times - as if you would bow before the five heads of Lord Shiva. feel the neck, bring the chin more to the throat and open the neck. Feel the breath. When you feel you are ready, come into the upright position again.

You have a beautiful, warm light in the neck, the whole back is open, the neck is open, wide - and then once more you don't allow yourself to move, you give the order to your body, now for a while not to move. There is the ray coming from the highest into the depths and in the middle axis of the ray there is this diamond silk thread of consciousness touching in the middle of your head that star. That finest star is a brilliant lingam, the most perfect elipsoid, bipolar. Having the concentration in this fine breathing centre, you also be aware of your breathing, there is only breathing and your observation and feeling of the breath - I am rhythm - I am pulsation - the sudden appearing, spontaneous vibration, pulsation, emanation - and yet behind, beyond all this.

Think of a centre inside the most brilliant but smallest star, inside there is a wonderful nothing of all that you could ever think. Breathing in and breathing out, feel there is a wind in the nose, I am the wind, I am the breath, I am the rhythm of your breathing - together we are going into your body, together we are going out - I am breathing you feel how the whole body, like a baby's body is breathing in growing and breathing out, relaxing. Don't breath deeply, don't breathe superficially - be the breathe - everything in the breathe - rhythm of the breathe and the two energy points of the turning, breathing in and breathing out. Try to feel with the inside, with the very centre, with the star, try to feel the short moment after holding back, just before breathing out and be aware of the moment just before you breathe in.

Now for a while you allow the body to move. Bow and come up, stretching the whole body. Now bring the body back into the upright position. Now, so as to have more air and more energy, breathe in and out very quickly - softly, quickly with short breaths as if you were sniffing a wonderful perfume of unknown flowers, flowers around the moon on this head of mine. And now go once more to the middle of your head, exactly behind - beween the eyebrows and the beginning of the nose - behind it is the entry where the nerves of the spine enter the head, these two have to

be brought onto the same level, opening the neck, bringing the chin gently to the throat.

Feel how you are breathing, smiling, breathing deeply. And now feel the middle of the head - feel the breathing and the star in the middle of your head is without weight, without heaviness, swimming on a mirror. You are sitting in the ocean of endless life - this ocean is called "I am life" and the mirror is the appearing consiousness on the level of the middle of the head. Try to bring your sense of hearing there, don't hear my voice only outside, hear inside and the eyes give their light to that middle point and the breathing is going to that point and the energy which holds you upright is going to that point. You are sitting in that water of life and the mirror and the peaceful, endless mirror is just going through your head tingling very gently, the star, as though you could feel the liquid, the silvery circle of the water refreshing your body............where that mirror touches the gliding, swimming, flying point without movement. Now you give all your attention, you don't move. Only the breath goes in and out gently without special intention. And millions of diamond, silk rays concentrate, coming to that point from all sides, from the heights, from the depths, from the widths - in front, behind, from all sides come the diamond, silk rays to this brilliant lingam. Of this lingam you may know that inside of this most little centre there is nothing of whatever you could think, but the spring of all - this I am, here I am - here I am speaking. In reality I am in you, I project myself into this sphere of physical apprearance and life - substance - space and dance and material. Now give up being this or that, don't take on a position because you are nothing but a spark of light.

Do you know what is sweet? Do you remember sweetness? Remember sweetness............smiling, a little happiness and concentrate all this in that star, this brilliant, tiny lingam. Bring all that you can remember of sweetness to this very centre. Think now to this point in the middle of the mirror of consciousness of life, sitting in that water, you are breathing in and breathing out at the same time - millions of radiations are coming from that centre, uncountable, over that mirror which is only a mirror, yet existing, coming like a first vibration, an emanation, pulsation, radiation, from that very centre. Don't allow the body to move, don't allow the body to move! You can move in your whole life,- have some minutes without physical movement, only breathing. Have the will, have the love............to

the world, to God, and this will allows you not to move for some minutes. I want your highest discipline, I want your strongest concentration - as if life depended on that-as if life and death depend just now on that concentration-because it's true, it just depends on that. If you only want the appearance of life, if you only want the Maya of the Maya, then you don't need a special concentration, but if you want to have real life, oneness with God, truth and real love and eternal bliss and Moksha then concentrate! - as if your life depends on that, because life depends just and only on that! Feel now your nose and the inside of your nostrils, without too much movement, very gently you breathe more deeply - and you go with the rhythm, you go with your own first rituals, ritual in and out - and in and out - concentrate the light from all sides and breathe out, emanation, very small when you breathe in, endlessly wide when you breathe out.

Feel your eyes and the light of your eyes and direct it to the central point. Do the same with ears, taste, smell, touch (feel the whole body), sense of balance, movement, warmth, sense of life, sense of the word, thought and, "I"- all the 12 senses are brought to this centre and offered to God. And all the time breathing in and out feel the pulsation.

The star on the fine diamond, silk thread moves down to the larynx - again see the mirror - breathe in and out humming and thinking OM so as to find the centre of vibration in the larynx. At this point there is a ruby which goes to orange, yellow and white, like metal heating up as you breathe in light, concentrated and out, emanating in all directions.

The star moves down the diamond, silk thread to the middle of the breast, here is the most beautiful lingam full of light and fire and love - feelings are the messengers of love, love is much deeper.

Smile all the smiles of your life, remembering all the good and beautiful experiences - offer them in this centre to God. God is doing it anyway!

You have to be fearless with God, so fearless that you can say inside, "If this one is really God then I want to open myself completely, if not, I will still open myself completely because God will anyway give me good results and protection against him." I am the one, not the enemy. I am coming, I am very near to you being really your friend. Friend of each person, rich or poor, high or low, well-known or forgotten - I forget nobody. I hold all in my love, giving warmth like a mother and giving clarity like a father. So those who would like to enter this special meditation with me

are heartily invited. We sit upright, so that your back doesn't have to hold too much - sit upright without too much tension. You just sit and look to your breathing, you are only breathing and breathing and all the sounds around, like my voice of thunder (from outside) or lightening are heartily invited to be inside. That's why the thunder is here, directly over the roof.

Feel how you are breathing,. don't correct directly, just be in the breathing - be breathe. I am this life, you win by breathing. If you are breathing in a good way, you invite much more of me, you invite much more of Shakti, you win much more of that Prana which you need for all the organs and for every step of higher and higher development. Don't think, just breathe. Be very interested in what happens. In studying breathing you should first learn to write down what you have learnt and to gain that knowledge which you can awaken in every moment, Which you can remember in every moment whenever you want. Then don't think,- not knowledge but experience,- don't think about the thing at that moment as if from a distance, it must be like jumping into the ocean.

Now begin to breathe more deeply and try to make the in and out breaths the same lengths - you take time to breathe in, slowly, deeply, without sound and you take time once more to relax and to give back the air. Then breathe more deeply and slower, in and out and you feel as long as you are breathing, the inside of your nose. After breathing in, hold back a little and then freely exhale. After exhaling you wait a little and then with new life energy you breathe in. Good, deep breathing is a wonderful help for your health and is a food for the nerves, and the nerves give nourishment to all organs. Take...........the eyes for example, the eyes have more and more light and life energy, different kind of Prana. Now for a while you relax the body and bow a little, especially the neck - the head is like a golden bell, heavy. Then come again into the upright position and you remember the pillar of light going through you like an axis - you perceive this pillar of light coming from the highest heights to the Sahasrara cakra - coming through into the depths of the earth, through the fire of earth without end there, without beginning. You are sitting in this ray of light, in this lingam of light and this light gives you the power to bring the back into a good, supple, upright position. Open the eyes in the direction of your nose, looking over that mountain to that point the head is free, the chin a little inclined to the throat, neck open, high the body equilibrated not

hanging, not to much to the left or to the right. Looking with the eyes to that point you think now that there is a light going through the eyes to that point, and breathing out you go over the bridge of your ray of light - and breathing in you come back from that point over the back of the eyes, you prolong the ray of the eyes behind as if you could look behind with the other side of your eye into your brain, into your higher spheres also. From now on you should know that you are not only able to look forward in the physical, but that you can use the same ray of light, sending it backwards, parallel to the nerve of the eyes, touching the whole light structure of your head. So, in an upright position, fixing the eyes on that point - breathing out you give that light, breathing in you come back over the bridge of light. Breathing out in the direction that you are looking and breathing in, coming back over the bridge of light through your eyes into your head, you bring together the rhythm of life, your will in the will of God, with your consciousness life energy and light consciousness.

After three deep breaths which should be agreeable to you, after three breaths you close the eyes and you concentrate on the Ajna cakra. Breathing inside the nose, you bring the energy from outside through the nose to the Ajna cakra and give it back again and you are in the rhythm and you concentrate the energy which you can win through breathing in the Ajna cakra, but from there you bring it to the middle of the head as if you could breath through the nose to that point, the very center in the middle of the head.

If you feel during breathing a special tingling or sharpness inside the nose or between the eyebrows, don't fear, it is your own light and some of your own fire essence. Your face should lose all tension once more and should have a little smile, the smile of a child pure smiling - smiling once came from bliss, the soul remembers that wonderful oneness in bliss - in smiling you can find again the way to that high state of life and consciousness and love. Now after a while you open your eyes and look to that in a mild way. That point could be a lingam, that point could be a crystal, that point could be a flower, a star - looking as though from a mountain. Now you give the body the order not to move - now like a mountain, stable - looking to that point as though you were looking from the summit of the mountain looking down to the village, to see if you can see your own house down there in the valley. Now you are high up on the

peak of the mountain. And once more you close the eyes and bring in the light through the nose to the middle of the head as if you could breathe directly through the Ajna cakra. You attract the Prana as if in beautiful colours and movement through a mild open flower and bring the light to the centre of the head breathing out through Ajna cakra, breathing in through Ajna cakra. Like you gain Prana through the nose with the air, so with the ordering will of the Ajna cakra you bring the light and thousands of energies through the forehead to the middle of the head. Breathe in as if you would sense the perfume of a wonderful flower. In activating this sense of smell you are giving some impulses of light through the column, through the pillar of light to the Muladhara cakra. The Muladhara cakra is gently awakened by this exercise of unification of breathing and smelling.

Now remember the pillar of light, with light like the sun, an endless pillar of millions of different energies. You are all a ray of the one sun, the God, and each of you can remember his ray—see the lingam endless in the heights and in the depths.

Courtesy Mrs. Christene
Killen Berger

to be continued

चित्सूर्य के स्थूल, सूक्ष्म और पर–ये तीन रूप कहे जाते हैं। इसका स्थूल रूप वही है, जो बाह्य सूर्य का है। इस का सूक्ष्म रूप वही है, जो ब्रह्म-नाड़ी का है, जिस का योगी-जन ही अनुभव करते हैं। इस का पर रूप वही है जो समाधि और व्युत्थान के भेद से परे है और जो बाह्य तथा आन्तरिक जगत में एक जैसा रहता है। इसका अनुभव भी योगी ही करते हैं।

स्वामी लक्ष्मण जू महाराज

FOUR KINDS OF SPEECH

Dr. B. N. Pandit

Bhartṛhari, an ancient Sanskrit grammarian and the originator of the philosophy of Sanskrit grammar, says in his Vākyapadīya, "The eternally existant Brahman, being the changeless essence of speech, appears in the form of the phenomenal substance out of which the process of the universal existence proceeds."

Anādinidhanaṃ brahma śabdatattvaṃ yadakṣraṁ

vivartate'rthabhāvena prakriyā jagto yataḥ. (V.P. 1-1)

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ (वा. प.)

Many grammarians have tried to elucidate such principle of *śabda - brahman*, but have not succeeded in putting forth any convincing explanation of the principle concerned. How does speech or word become matter and mind? Some commentators and later writers said that *Brahman* utttered the word '*bhū*', meaning earth, and the earth came actually into existence. They quoted some scriptural passages like *"Bhūrityuktvā bhuvamasrjat"* (भूरित्युक्त्वा भुवमसृजत). But it is, no doubt, a fact no one among such wirters has presented any convincing, logical or psychological explanation of the principle concerned. *Śabda-brahman* has thus remained a hidden mystery with all the successors of Bhartṛhari.

Authors of Kashmir Śaivism, especially Somānanda, Utpaladeva and Abhinavagupta, having attained direct experience of such occult truth about the essence of spiritual philosophy, through the awakening of a superior type of intuition, brought about by means of successful practice in Śaiva Yoga, explained the mystic principle quite convincingly. The sum and substance of their views regarding *Śabda-brahman* and four types of speech is given below:–

Speech is not only the means to convey one's mental ideas to others, but also to understand things personally. The speech that serves as the means to convey ideas to others is generally the spoken speech termed as *Vaikharī* (वैखरी) or its written version. *Vikhara* is the hard gross from of a being and *Vaikharī* has it as its abode. It is the gross speech. A finer

speech that serves as the medium of thinking and understanding, the speech through which a person thinks and forms definite and indefinite ideas of words, their meanings is the mental speech. A word, its meaning and the undifferenciated idea of the both, go always together, hand in hand, in it. We never form any idea of a thing mixing it with some word-image, known as *Abhilāpa*, that shines brilliantly as the essential part and parcel of the idea. Both definite and indefinite ideas are thus penetrated and pervaded by such word-images as their essence. Such mental speech of ideas, the medium of all thinking and understanding, is termed in Indian philosophy as *Madhyamā* speech (मध्यमा वाक्). The term means both interior and in-between. Being a mental entity and having the interior *puryaṣṭaka,* (पुर्यष्टक) as its abode, it is the interior speech. Puryaṣṭaka, the subtle body, has its position in between the gross physical body and that pure spiritual form of a being which consists of pure I consciousness, besides, having its position in between *Vaikharī* and *Paśyanti,* it is the in-between speech. Madhayamā speech contains word image, word meaning and a unified idea of the both shining in it. Mutual diversity of these three elements also shines in it, through not as distinctly as in *Vaikharī*. A person, while thinking, is aware of the fact that his ideas, their word images and the objects understandable through them are three different elements having a close mutual relation. It is on such account that Patañjali refers to these three elements of speech by saying. "Gauritiśabdo, gaurityartho, gauritijñānam)" (गौरितिशब्दो गौरित्यर्थो गौरितिज्ञानम्). All these three elements of Madhyamā shine simultaneously inside the understaing faculty of a knowing person, but shine, there as three different elements, found together by a sort of mutual inseparability. But inseparability does not mean unity. It is a constant relation inside the field of diversity. Further light on the essence of speech has been thrown by the ancient authors of Kashmir Śaivism in this way:–

Awareness is, in reality, the basic essence of all speech. we think of and talk about only such entities of which we are already aware. We intend to make others aware of such things while we speak about them. Awareness or *Vimarśa* is thus the central point in all functions of speech, It is in fact the basic speech and the activities of thinking, understanding, speaking and writing are just some outward manifestations of awareness. Listening is also aimed at forming some awareness. *Madhyamā* is thus an internal reflectional manifestation of awareness taking the form of ideas. It is an

outward activity in this sense that it shines as something other than the thinking subject. *Vaikharī* is the reflection of awareness in a still grosser outwardness. It spreads out in the form of sound, it is heared by other beings also and develops in them a type of awareness similar to that which exists in the mind of a speaker and is projected externally by him through its use. The whole process of *Madhyamā* and *Vaikharī* revolves thus around awareness or *Vimarśa.*

The position of *Paśyantī*, the basic beholding speech, is still interior in comparison with *Madhyamā*. It resides in the inner person of a being and is far subtler in character than even *Madhyamā*. Through its medium a knowing person beholds in him the objective existence and on such account it has been given the name Paśyantī, the beholding speech. Since mutual difference between word, word-meaning and idea of both starts to shine in the mental states of thinking and understanding, and since this beholding awareness has its position inside the pure being of a person, lying beyond mind and everything mental, such difference does not shine so clearly in *Paśayntī*. Besides, *Paśyantī* shines at such a state that transcends all types of ideation or *Vikalpa*, because ideas are formed by mind. *Paśyanti*, no doubt, beholds the objective existence in its undiversified form of simple this-nessor "Idantā" but does not form at all any idea or *Vikalpa* about it. It shines as a pure self awareness bearing just a shade of this-ness and appears as "Aham Idam", I am this. It is in fact the speech consisting of pure self awareness at the stage of partial unity. Since all the three elements of mental speech shine in it in an undiversified form, and since both, the beholding subject or 'Aham' and the beheld object or 'Idam', become evident in it, it is a speech belonging to a stage of partial diversity as well, as it is aware of more than one element. *Vaikharī* and *Madhyamā* consist of sound and idea but *Paśyanti* is a speech conducted by awareness alone. Being the medium of the revelation of the finer essence of all existence, it is counted as a speech or *vāc*, because speech is a medium of non-perceptional and non-inferencial revelation. Since awareness itself through speech, *paśyantī* also is a speech because it is a type of self expression of the beholder. Words and word-images, as well as ideas, shine in *Vaikharī* and in *Madhyamā* in some definite order of succession. But no successiveness of any kind appears at all in *Paśyantī*. It is therefore defined as "Akramā or Saṃhṛtakramā," that, is the speech in which the order of successiveness

becomes totally dissolved. It is further been defined as 'Svarūpa-Jyoti', the psychic self-luminosity of the beholding subject. A clear realization of *Paśyantī* can be experienced by means of practice in Śaivayoga. When one's mind free from all objective ideas stops all this objective functions of ideation, it becomes one with the psychic lustre of the pure consciousness of the subject and the self awareness of the unity in diversity, termed as *Paśyantī*, shines through its own psychic luminosity, provided the person does not lose himself in dreamless sleep. A person possessing a super-vigilant attentiveness can have a momentary glimpse of *Paśyantī* in some high pitch of an emotion like anger, joy, wonder, bewilderment etc. But generally such a fit of sharp emotion is so short lived and the mind of common man is so sluggish that no introspection about it becomes possible. A thinker, blessed with a finer type of sharp awareness, can realize it in between two mental ideas in the form of the pure I-consciousness which shines there as the essential connecting link of such ideas. A Śivayogin sees *Paśyantī* on the occasion of the rise of such pure perceptional cognition which is free as yet from mental ideation and is known as 'Nirvikalpa-saṃvedana'. An advanced Śivayogin can easily realize *Paśyantī* at all such occassions. *Paśyantī* is that self awareness in which both I-ness and this-ness shine simultaneously as knit together by a relation of unity in diversity. "Aham idam" is the form is termed as *Paśyantī*, the beholding self awareness. Beyond it there is an other type of awareness which does not at all behold anything but shines only itself. It shines as the luminous revelation of only the pure subjective I-consciousness transcending all physical and mental means of knowledge. The pure awareness of the self shines in it as the infinite, eternal, all-containing, perfect, pure and divinely potent absolute subject that is 'I', It is not a subject in relation to any object, but only the absolute and indepedent subject. The subject - hood of such subject does not depend on any objective activity. It is the perfect independence of the infinite consciousness to manifest objective existence in the manner of a reflection, in accordance with its free will, through its own divine power and on account of its playful nature. No object appear at all in such transcendental self awareness termed as Parāvāc, the supreme speech.

to be continued

A Re-appraisal of Lal Ded

Prof. A.N. Dhar
(Ex-Head of the Deptt. of English
Kashmir University Kashmir)

Re-appraising Lal Ded as a saint-poet and mystic is the need of the hour. Perhaps this task has to focus first on exploring what the genuine poetic outpourings or *vaakhs* of the great saint are (to be sifted from the spurious ones). Then a reinterpretation of the genuine utterances is to be attempted with a view to removing a number of misconceptions and erroneous notions about Lal Ded, some of them obviously based on deliberate distortions and even lies spread to serve a vested interest. All this will call for rigorous research - that is a challenging task in view of our present inaccessibility to the relevant and some indispensable materials lying unused in the State Research Library, that was years back shifted to the Kashmir University campus at Hazratbal, Srinagar.

In spite of the severe handicaps of Lal Ded scholarship, fresh research studies on the saint-poet can take off from the pioneering work in the background accomplished by such scholars as Bhaskar Razdan, Grierson and Barnett. Sir Richard Temple and Pt. Anand Kaul. To my mind, Prof. Jayalal Kaul's *Lal Ded,* a subsequent publication, is a monumental little volume that can serve as a guide-book to the prospective researchers. Compact and packed as it is with documentary details, it has to be tapped with care as a rich resourse, being highly useful as a secondary source material. Professor Kaul has also done a pioneering job in raising sensible and legitimate questions about the *authenticity* of Lalla *Vaakh* - how best to establish it through a stylistic study of the utterances as they have come down to us by word of mouth. His intelligent grasp of what linguistic change, over a period of time, in its bearing on the *Vaakhs*, involves in a cross-cultural context, is praise-worthy. Some of the crucial observations he has made further on the so-called evidence of various influences on Lal Ded are valuable too. And his forceful rebuttal of the claims some scholars have made about the fusion of various schools and creeds in her *Vaakh*, as if consciously attempted by her, deserves to be specially complimented. His total rejection of the evidence put forward by a couple of scholars that Lal Ded at a later stage of her life came under the decisive influence of Islam, followed by her conversion to the new faith, is based

on sound and convincing arguments.

Prof. Jayalal Kaul's outstanding contribution to Lal Ded scholarship in the book titled *Lal Ded* has been followed by another accomplished work on the saint-poet - authored by Prof. B.N. Parimoo, which too is a significant contribution in terms of his detailed literary translation and interpretation of the *Vaakhs*. Its chief merit lies in the chapter-wise sequencing of the verse-sayings aimed at demonstrating Lalla's spiritual ascent to the plane of Supreme consciousness and her union with *Parama Siva* as a *Yogini.* Both Prof. Parimoo and his predecessor, Prof. Jayalal Kaul, have maintained that Lalla followed the Saivite technique of meditation based on Kundalini Yoga.

Subsequent works on Lal Ded brought out in the past three decades or so include Kotru's *Lal Ded : Her Life and Saying* published in 1989, a special 'Lal Ded' number of the *KOSHUR SAMACHAR* brought out in the year 1971 and Prof. R.N. Kaul's *Kashmir's Mystic : Poetess Lal Ded alias Lalla Arifa* published in 1999. Nilakanth Kotru too has attempted his own English translations of the *Vaakhs*, falling in line with the Vaakh-sequence adopted by Jayalal Kaul before him. His meanings and explanations are plain and simple, reflecting, at the same time, a good grasp of the doctrines of Kashmir Saivism. As regards Prof. R. N. Kaul's recent book on Lal Ded, it has some novel features that cannot escape the attention of the thoughtful reader. It is readable and enjoyable in view of its literary charm and lucidity of expression. The interpretation of the *Vaakhs* points very much to a perceptive and assimilative mind behind the book - inasmuch as the content of the *Vaakhs* is made intelligible to the average reader, appealing, at the same time, to the scholar the author's beauty of expression. The book would have gained further in value if the author had provided adequate details about the essentials of *Trika or Kashmir Saivism* and mysticism in general in his account of Lalla as *Kashmir's mystic* (which is the main title of the book).

The special number of the *KOSHUR SAMACHAR* mentioned earlier is a very useful source material for the Lal Ded scholar who cannot, in the prevailing circumstances, have an access to the materials available in the State Research Library. Besides providing English translations of Lalla's verse-sayings in a separate section, the journal contains useful and learned articles in English and Hindi contributed by many competent writers. It also contains two short write-ups in English contributed by Swami Laxman

Joo and J. Rudrappa.

I should like to mention two more materials on Lal Ded before I switch on to the other related aspects of the topic of this paper. I was able to lay my hands on the small volume titled *Lalleshwari : Remembered by Swami Mukhtananda* published in 1981. The preface by Swami Prajnanand and the introduction by Joseph Chiltou Pearce, both thoughtfully written, are valuable as informative pieces on Lal Ded and her sayings. Then follow English renderings of the sayings in the form of poems attempted in the free-verses pattern. These poems capture the essence of the *Vaakhs* without observing accuracy in keeping close to the form and content of the original text. They could be described as "transcreations" rather than translations. Joseph Chilton Pearce justifies this feature by observing that "A true translation is always a re-creation".

The other book I acquired very recently was publihsed in early 1999. It bears the title *"Voice of Experience" : Lall Vaakh of Lall Ded/Lall Short of Kashmir* and contains English translations of 154 *Vaakhs* attempted by the author, B.N.Sopori. The *Vaakhs* are grouped under five headlines chosen as the titles of individual chapters-'Sadhana', 'Adventure in Space' 'Fortitude', 'Precepts' and 'Discourses with Guru (master)'. In the foreword, the author himself, as translator and commentator, describes his particular approach to the study of the *Vaakhs* - involving scientific terms and concepts such as 'vibration', 'frequency', 'wave-length' etc. which, interestingly it seems to me, are drawn from his professional vocabulary as a former employee of the Dept. of Telecommunication. Since he is not a man of any special literary expertise, he has not been able to develop his ideas into a coherent and systematic theory sustainable throughout the study. He manages somehow to communicate intelligible in English though his command of the language is faulty at places. All the same, he seems knowledgeable about the import of the *Vaakhs* in terms of actual Yogic practice. As he informed me himself, he plans to bring out a second volume as a sequel to the present one, which will contain another 150 *Vaakhs* or so. I wonder if all the *Vaakhs* the author has collected are authentic as Lal Vaakh. The present volume has sold well despite what I see as its shortcomings. The author's attempt is a laudable one.

(to be continued)

भगवते रमणाय ॐ नमः

सद्गुरु महाराज की हस्तलिखित श्री रमण महर्षि की स्तुति, जो संस्कृत भाषा में ईश्वर स्वरूप ने लिखी थी, भक्तों और साधकों के हितार्थ यहां दी जा रही है। यह फोटो कॉपी उसी हस्तलेख की है ताकि सद्गुरु महाराज की मौक्तिककणतुल्य पदसंरचना का प्रातः सदा दर्शनकर सारे साधक स्वात्मलाभ से झूम उठें॥

शिवभक्त्यमृतास्वादात्तृणीकृतरसान्तरः।
राजानलक्ष्मणाभिख्यः सुधीर्नारायणात्मजः॥ १॥
काश्मीर देशवास्तव्यः शिवशक्तिप्रचोदितः।
महर्षेः रमणस्येयं करोति भक्तितः स्तुतिः॥ २॥
मौनेन मन्दस्मित भूषितेन
सद्भक्तलोकस्य तमो नुदन्तम्।
अपारकारुण्यसुधातरंगै-
रपांगपानैरवलोकयन्तम्॥ ३॥
अदाक्षमक्षीणदयानिधानं
यत्क्षेत्रभागे रमणं महेश्वरम्।
उपासकानां यदुपासनीय-
मरुणाचलं तं शिरसा प्रणौमि॥ ४॥
तस्मै नमोऽस्तु सततमरुणाचलाय ते
त्वत्क्षेत्रमङ्गीकृतमाहतञ्च यत्।
विद्रावितशेषतमो गणेन
दयालुना श्रीरमणेन योगिना॥ ५॥
ज्ञानालयं भगवतो रमणस्य तस्य
योगालयं यद्भवनं सुखस्य।
अभ्यासयोगेन सुशोभितञ्च यत्
महालयं तं शिरसा प्रणौमि॥ ६॥
नानावस्त्रैः शोभितं सुन्दरं च
तथा दिव्यैः योगमयैः स्फूर्त्तिभिः।
महापवित्रं तमयोगनाशनं
पीठं परं श्रीरमणस्य वन्दे॥ ७॥

अलौकिकां कामपि दृष्टिदीक्षां
धृत्वा हरत्येव घनान्धकारम्।
दयानिधानं जगतां महेश्वरं
तं श्रीमहर्षि रमणं नमामि॥ ८॥

श्रीमन्महर्षि रमणं वदामि
श्रीमन्महर्षि रमणं स्मरामि
श्रीमन्महर्षि रमणं नमामि
श्रीमन्महर्षि रमणं व्रजामि॥ ९॥

ज्येष्ठमासेऽसिते पक्षे नवम्यां गुरुवासरे।
मातृभूतेश्वरस्य या महापूजा करिष्यति॥ १०॥
शिष्यवर्गै र्भावयुतैः रमणस्य महाश्रमे।
तन्निमित्ता लक्ष्मणेन कृतेयं रमणस्तुतिः॥ ११॥

{भगवते रमणाय} ओं {नमः}

शिवभक्त्यमृतास्वादतृणीकृतरसान्तरः।
राजानकलक्ष्मणाभिख्यः सुधीर्नारायणात्मजः॥ १॥
काश्मीरदेशवास्तव्यः शिवप्राप्तिप्रचोदितः।
महर्षेः रमणस्येमां करोति भक्तितः स्तुतिम्॥ २॥

मौनेन मन्दस्मितभाषितेन
सद्भक्तलोकस्य तमो नुदन्तम्।
अपारकारुण्यतरङ्गभङ्गै-
रपांगपातैश्च विलोकयन्तम्॥ ३॥

[illegible]दयानिधानं
यतीन्द्ररूपं रमणं महेश्वरम्।
[illegible]
मरुणाचलं ते शिरसा प्रणौमि॥ ४॥

[illegible] नमोऽस्तु सततमरुणाचलाय ते
त्वत्सेवनमज्ञोकृतमाहात्म्य यत्।
विद्रावितशेषतमोगणेन
दयालुना श्रीरमणेन योगिना॥ ५॥

ज्ञानालयं भगवतो रमणस्य तस्य
योगालयं यदभवत् सुरवन्द्य।
अभ्यासयोगेन सुयोगिभिर्यत्
महालये ते शिरसा प्रणौमि॥ ६॥

नानावृक्षैः शोभिते सुन्दरं च
तथा दिव्यैः योगमयैः स्फटिकाभिः।
महापवित्रं तवयोगनाशनं
पीठं परं श्रीरमणस्य वन्दे ॥ ७ ॥

अलौकिकीं कामपि दृष्टिदीप्तां
धृत्वा हरत्येव घनान्धकारम्।
दयानिधानं जगतां महेश्वरं
तं श्रीमहर्षिं रमणं नमामि ॥ ८ ॥

श्रीमन्महर्षिं रमणं वदामि
श्रीमन्महर्षिं रमणं स्मरामि
श्रीमन्महर्षिं रमणं नमामि
श्रीमन्महर्षिं रमणं व्रजामि ॥ ९ ॥

ज्येष्ठमासेऽसिते पक्षे नवम्यां गुरुवासरे।
मातृभूतेश्वरस्य या महापूजा करिष्यते ॥ १० ॥
शिष्यवर्गैः भावदृप्तैः रमणस्य महात्मनः।
तन्निमित्तं लक्ष्मणेन कृतेयं रमणस्तुतिः ॥ ११ ॥

(सुश्री प्रभादेवी के सौजन्य से)

By. SWAMI Laxmanjee
SRINAGAR, KASHMIR.

श्री गुरवे नमः

आचार्य रामेश्वर झा

"श्री गुरुस्तुतिः" के अतिरिक्त आचार्य जी समय - समय पर सुश्री प्रभादेवी जी को अनेक सद्‌गुरु स्तोत्र रत्न भेजा करते थे। विदुषी साधिका इन रत्नों को रत्नों की तरह ही संभाल कर सुरक्षित रखती थी। परिणाम स्वरूप समय - समय पर इन रत्नों की अपूर्व ज्योति से प्रकाशित होके सद्‌गुरु महाराज की दिव्य स्मृति में हम भाव विभोर हो उठते हैं। सुश्री प्रभादेवी के हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इन स्तोत्र रत्नों को मालिनी में प्रकाशित करने के लिए भेजा।

सरस्वति! त्वं भव सावधाना
तथा मम स्वान्तवचःक्रियासु।
विकल्पधूलीकलितां यथात्वां
कुर्यां विशुद्धान्तु गुरुस्तवेन॥ १॥

रुषा कामं तु दहते कामं भक्ताय यच्छते।
नमः शिवाय गुरवे गुरवे शिव रूपिणे॥ २॥

सारूप्यवैरूप्यमयैर्वचोभि-
र्न वर्णनं पूज्य तवास्ति युक्तम्।

सर्वात्मकः सर्वविलक्षणश्च
भवन्विभो भाति यतो भवान्मे॥ ३॥
दासीकृतनान्तसहस्रशक्तिः
शक्तिः प्रदत्ता गुरुणा तु मह्यम्।
तयापि तं स्तोतुमहं विजिह्व-
स्तत्पादपद्मस्मरणं करोमि॥ ४॥
यः संस्मृतस्तन्मयतां ददानो-
विस्फारयन्शक्तिमसीममन्तः।
द्राग्बोधयन् विश्वमयं स्वरूपं
विश्वात्मतां यच्छति तं नतोऽस्मि॥ ५॥
कालत्रयातीतमिदं मदीयं
नित्यं विभुं व्यापकमद्वितीयम्।
संदर्शितं येन वपुर्विभातं
तं नौमि देवं गुरुमेव शंभुम्॥ ६॥
विभावयन्नापि न यस्य साम्यं
कदापि कुत्रापि च कोऽपि विद्वान्।
कथं गुरुः सो ह्युपमाविहीनः
प्रवर्त्यतामेतु हृदि स्थितोऽपि॥ ७॥
गुरुरेव परं ज्ञानं गरुरेव परं तपः
गुरुरेव परो मोक्षो गुरुं तस्माद्व्रजाम्यहम्॥ ८॥
गुरुरेको जगत्यस्मिन् सर्वसंसारतापहा।
लक्ष्मणेन्दुः कलापूर्णो राजतां जनताहृदि॥ ९॥
विभासितानन्त सहस्रभानुः
प्रकाशितो लक्ष्मण शब्दनेन।
बिभ्रन् वपुर्यश्च बिभर्ति विश्वं
यो मे गुरुभारतभाग्यभूतः॥ १०॥
निर्धूतदेहादि मित प्रमातृ-
भावो भवो भाति मितस्वरूपः।
देवोऽद्वयो यो द्वयतामुपेतो
विश्वं चिदानन्दमयं विधातुम्॥ ११॥
तस्मै त्वया वाच्यमिदं मदीयं
मूर्धा च वाचा मनसा प्रदत्तम्।
नमोह्यजस्रं भवतापहन्त्रे
देवाय दिव्यादभुतशक्तिधर्त्रे॥ १२॥

स्मृति–संजीवनी

सुश्री प्रभादेवी

ई. सन् १९८६ की यह स्मृति है। रक्षा-बन्धन का महापर्व था। ईश्वर-आश्रम श्रीनगर में सभी भक्त-जन गुरुदेव के, जो साक्षात् भगवान शंकर के ही प्रतीक थे, दर्शन करने आये। सारा दिन शिवस्तोत्रावली का पाठ होता रहा। सभी आनन्द-मग्न थे। घर की सुध-बध मानो खो बैठे थे।

गुरुदेव श्री ईश्वर-स्वरूप जी ने समय ढलते देख कर सबों को घर जाने की स्वीकृति दी। भक्त-जनों का मन, अपने गुरुदेव को छोड़ कर घर जाना न मानते हुए भी आज्ञा-पालन करने पर सहमत हो गया। सभी दर्शनार्थी सात बजे तक आश्रम से घर चले गये। आश्रम एक दम शान्त हो गया। पूरे सायं आठ बजे का समय था। ईश्वर-स्वरूप जी ने देवी श्री शारिका जी तथा मुझे बुला कर कहा–चलो हम तीनों मंदिर में जाकर अपनी ओर से मनमाने श्लोक आशुतोष शंकर को सुना कर उन्हें रिझायेंगे। हम दोनों आज्ञा सुनते ही महाराज जी के साथ 'अमृतेश्वर'-मंदिर में गये। पहिले गुरुदेव ने कुछ श्लोक पढ़े-तदनन्तर मैंने कुछ श्लोक पढ़े। उसके बाद श्री देवी जी ने निम्न तीन श्लोक पढ़े। गुरुदेव इन श्लोकों को सुन कर अति प्रसन्न हुए और उन्हें स्वरूप-लाभ-प्राप्ति का वरदान दिया। उन्हीं तीन श्लोकों को अर्थ सहित मैं मालिनी के इस अंक में भक्तों के हितार्थ दे रही हूँ :–

पीयूषांशुसुधामणिः करतले पीयूष कुम्भं वहन्,
पीयूष द्युति संपुटान्तरगतः पीयूष धाराधरः।
मां पीयूषमयूखसुन्दरवपुः पीयूषलक्ष्मीसखः
पीयूष द्रववर्षणोप्यहरहः प्रीणातु मृत्युञ्जयः॥

अमृतमय किरणों वाला चन्द्रमा जिनके माथे पर रत्न की तरह प्रकाशमान है, अमृत-कलश को जिन्होंने हाथों में धारण किया है, कमल के संपुट में जो अवस्थित हैं, अमृतपूर्ण गंगा की धारा को जिन्होंने शिरोधार्य किया है, अमृतमय-किरणों को धारण करने वाले चन्द्रमा के समान जो सुन्दर शरीर को धारण करने वाले हैं, अमृत तथा लक्ष्मी के मित्र अर्थात् सागर मन्थन के समय अमृत प्रकट हुआ, श्री लक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ और कालकूट विष भी जिसे मृत्युञ्जय ने गले में धारण किया और नीलकण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुआ। अतः मृत्युञ्जय के अमृत और श्री लक्ष्मी मित्र हैं और जो मृत्युञ्जय प्रतिदिन अमृत की वर्षा करने वाला है ऐसा–मृत्युञ्जय (मृत्यु-जयी) अमर शंकर मुझ पर प्रसन्न होवे-मुझे मुक्त करें।

देवं दिनेशाग्निशशाङ्कनेत्रं
पीयूषपात्रं कलशं दधानम्।
दोर्भ्यांसुधांशुद्युतिमिन्दुचूडं
नमामि मृत्युञ्जयमादिदेवम्॥

जो महादेव, सूर्य अग्नि तथा चन्द्रमा रूपी तीन नेत्रों को धारण किये हुए हैं, अमृत-पात्र कलश (घड़ा) जिन्होंने हाथों में धारण किया है, चन्द्रमा जैसी शोभा वाले हैं, चन्द्र-कला को माथे पर जो धारण किये हुए हैं ऐसे आदिदेव मृत्युञ्जय को मैं नमस्कार करता हूँ। अर्थात् अपनी मितप्रमातृता को छोड़ कर स्वात्मप्रमातृता का अनुभव करना चाहता हूँ।

उद्यद्दिवाकरसहस्त्ररुचिं त्रिनेत्रांसिंहासनोपरिगतामुरगोपवीताम्।
खड्गम्बुजाढ्यकलशामृतपात्रहस्तां राज्ञीं भजामि विकसद्वदनारविन्दाम्॥

उदीयमान हजारों सूर्यों की सी शोभावाली, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा रूपी तीन नेत्रोंवाली, जिनके गले की शोभा को सांप-जनेऊ के रूप में शोभित कर रहे हैं जो शेर के आसन पर विराजमान हैं खड्ग (तलवार), कमल, पूर्ण कलश और अमृत पात्र जिनके चार हाथों में हैं ऐसी प्रफुल्ल कमल-तुल्य मुख वाली राज्ञी (दुर्गा) भगवती को मैं भजता हूँ अर्थात् उनका गुणानुवाद करके उनके सम्मुख आने का प्रयास करता हूँ।

गुरुवर्य ने अपने मुखराविन्द से जिन तीन श्लोकों को पढ़ा था वे भी मैं यहां लिख रही हूँ। सहृदय विद्वज्जन स्वयं इन का अर्थ बांच कर रसास्वादन करें :—

पूर्णात्पूर्णं प्रसरति, पूर्णे पूर्णं विराजते।
पूर्णमेवोदितं पूर्णात्पूर्णे पूर्णं व्यवस्थितम्॥ १॥

शान्तं समं समुदयास्तमयैर्विहीनमा-
कारमुक्तमजमस्वरमच्छमेव।
सर्वं सदा सदसदेकतयोदितात्म-
निर्वाणमाद्यमिदमुत्तमबोधरूपम्॥ २॥

यावानात्मावरणविधये कल्पते कोऽपि कल्पः
तावानात्माप्रकटनविधौ नीयते वोपयोग्यम्।
येन तस्मै परमगुरवे तीव्र कारुण्यपूर्ण—
श्री शर्वाणीदयितसततावेशभाजे नमोऽस्तु॥ ३॥

स्वतन्त्रश्चितिचक्राणां चक्रवर्ती महेश्वरः।
संवित्तिदेवताचक्रजुष्टः कोऽपि जयत्यसौ॥

ऊँ नमः शिवाय

शैव दर्शन के वातायन से

प्रो. नीलकंठ गुर्टू

स्वीकृतिः–यह शब्द परम-पुरुष के बहिरंग विश्वमय रूप का द्योतक है। तीनों लोकों में दृष्टिगोचर होने वाली सारी आकृतियां जिसकी अपनी ही आकृतियां हो उसको "स्वीकृतिः" कहते हैं। विश्वमयता में अनादि-काल से न जाने कितने अगणित जड एवं चेतन पदार्थों के साथ संबन्धित आकृतियों की सृष्टि चलती रहती है। वे सारी आकृतियां उसी परमशिवमय मौलिक आकृतियों की खान से उद्भूत होती हैं। वह परतत्त्व ही विश्वमय अवस्था में **सर्वाकृतिः**- अर्थात् सारे बहिरंग स्थूल आकार-प्रकारों की समष्टि है। यही कारण है कि परतत्त्व को इतर नामों के साथ - साथ "सर्वाकृतिः" भी कहा जाता है।

निराकृतिः– यह शब्द उसी लीलापुरुष के विश्वोत्तीर्रा भाव की अभिव्यञ्जना कर रहा है। विश्वोत्तीर्ण भाव में सब कुछ संवित्-स्वरूप होने के कारण किसी भी प्रकार की आकृति या रूपसंरचना के लिए कोई स्थान नहीं होता है अतः शास्त्रकारों ने उसको अनाख्य-पद उद्घोषित करके रखा है। केवल पहुंचे हुए सिद्ध-गुरुओं के कथनानुसार वह अनाख्य पद अनादि, अनंत एवं असीम प्रकाशविस्फार है जो विश्वमयता में ही विश्वोत्तीर्ण और विश्वोत्तीर्णता में ही विश्वमय है। फलतः जिस ईश्वरीय अवस्था में आकृतिभेदों का कोई बखेडा न हो उसको "निराकृतिः" कहते हैं। भगवान विशुद्ध प्रकाशमय होने के कारण "निराकृतिः" भी हैं।

सर्वाक्षेपः– परमात्मा की एक ही मुख्य शक्ति है जिसको शास्त्रीय शब्दों में स्वातन्त्र्य-शक्ति कहते हैं। इसी स्वातन्त्र्य-शक्ति से दूसरी असंख्य शक्तिधाराओं की उद्भूति होती है जिनसे भगवान् विश्वमय रूप में अनन्त प्रकार के जड-एवं चेतन पदार्थ वर्गों के सृष्टि संहार आदि कृत्य संपन्न कर लेते हैं। वास्तव में मुख्य स्वातन्त्र्य शक्ति ही अन्य अनन्त शक्तियों का आक्षेप (बलपूर्वक आकर्षित करके स्वरूप मे समाना) करके और स्वरूप में समा कर विश्व के अनन्त प्रयोजनों को सिद्ध करवाती है। इस प्रक्रिया को शास्त्रों में "सर्वाक्षेप" कहते हैं।

बहुशक्तित्व– स्वरूप में असंख्य शक्ति पुञ्जों को धारण करने के ईश्वरीय स्वभाव को बहुशक्तित्व कहते हैं। शास्त्रों की मान्यता के अनुसार परमपुरुष में बहुशक्तित्व का स्वभाव भी तभी पनपता है जबकि वहअपनी मुख्य स्वातन्त्र्य-शक्ति के साथ नित्यसंपृक्त

हैं। शास्त्रों का कथन है कि ईश्वरी स्वातन्त्र्य-शक्ति ही चिन्तामणि रत्न की तरह आवश्यकता के अनुसार शक्ति का स्त्रोत बहाने लगती है।

शक्तिः– "शकनं शक्तिः" - इस शास्त्रीय विश्लेषण के अनुसार किसी भी दुर्घट कृत्य को संपन्न कर सकने की क्षमता को "शक्ति" कहते हैं। शक्ति की परिभाषा के संदर्भ में शास्त्रकारों ने शक्ति का यह लक्षण प्रस्तुत किया हैः–'फलभेदादारोपित भेदः पदार्थात्मा शक्तिः' किसी भी पदार्थ के अभ्यंतर में जीवनाधार आत्मा बन कर व्याप्त रहने वाली, कुछ कर सकने की क्षमता को शक्ति कहते हैं। मूलतः वह शक्ति एक ही है जो कि "स्वातन्त्र्य-शक्ति" कहलाती है। अलग-अलग क्रियाकलापों को संपन्न करते रहने के कारण फलभेद की उपाधि के अनुसार उस एक ही को असंख्य नाम दिये जाते हैं– उदाहरणार्थ दर्शनशक्ति इत्यादि।

प्रकाशः– यह शब्द ईश्वरीय बोध का वाचक है। शास्त्र कथन के अनुसार प्रकाश वही है जो स्वरूपतः अवर्णनीय आलोकपुञ्ज (ज्ञान का आलोक) होने के साथ-साथ समूचे विश्वमय एवं विश्वोत्तीर्ण प्रपञ्च को प्रकाशमानता प्रदान कर देता है। तात्पर्य यह कि अनुत्तर सारे पदार्थ वर्ग को अहं-प्रत्यवमर्श की ईश्वरीय युक्ति से निजस्वरूप के साथ एकाकार बनाकर प्रकाशित कर देता है।

देहली दीपन्यायः– यह एक न्याय है जिसको शास्त्रकारों ने बहुधा दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करके अपने-अपने दार्शनिक दृष्टिकोणों को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। शैव संदर्भ में इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार देहली पर रखा हुआ दीप कमरे के अंदर और बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार शिवभाव एवं नरभाव के मध्य में अवस्थित शक्तिभाव दोनों ओर के प्रवेश द्वार की आवश्यकता को पूरी कर देता है। यही कारण है कि शास्त्रों में शक्तिभाव को मुख अर्थात् प्रवेश का मुख्य उपाय माना गया है 'शैवी मुखम् इह उच्यते'।

अपह्नवः–किसी प्राचीन काल से चली आती हुई परम्परा या विचारधारा को एकदम झूठा सिद्ध करने के स्वभाव को अपह्नव कहते हैं।

सर्वापह्नवहेवाकधर्मः– यह लंबोत्तरा समस्तपद किसी बौद्ध विचारक का वाचक है जिसने अपने पहले से ही चली आती हुई उत्कृष्ट दार्शनिक परम्पराओं-खासकर-पूर्वमान्यताओं को हठपूर्वक झुठलाना अपना धर्म बनाया था। भगवान अभिनव ने तंत्रालोक में बौद्ध दार्शनिकों को इसी नाम से पुकारा है। वे लोग ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय इन तीनों का सद्भाव नहीं मानते हैं।

श्री तन्त्रालोक विवेके श्री जयरथाचार्यपादैःस्तुताः योनि समुद्भूताः जयाद्याः रुद्राः

भाषानुवादक-
प्रो. मखनलाल कुकिलू

(२)

(गतांक से आगे)

श्री तन्त्रालोक विवेक के सप्तम आह्निक से सम्बद्ध "जयरुद्र" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "च"

तत्तन्मात्राभ्युदय प्रगुणीकृत चण्डभैरवावेशः।
विद्रावित भवमुद्रो दृढयतु भद्राणि जयरुद्रः॥

तत्तन्मात्राम्युदय– सभी मन्त्रों में मातृकायें सुस्थित हैं अतः उन उन मन्त्र सिद्धियों के प्रकट होने से, प्रगुणीकृत सौ गुणा परिवर्धित, चण्डभैरवावेशः –शिव समावेश, विद्रावित–मिटानेवाला, भवमुद्रः – सांसारिक व्यवहारों को, दृढयतु–सुदृढ़ बनाले, भद्राणि–मंगल कर्मों को, जयरुद्रः – "जयरुद्र" नामक रुद्र।

विशेष मन्त्रसिद्धियों की अभिव्यक्ति से सौ गुणा शिवसमावेश को विकास में लाने वाला और सांसारिक व्यवहारों की छाप को मिटाने वाला " जयरुद्र" नामक रुद्रदेव हमारे मंगल कार्यों को सुदृढ बना ले॥

तत्तन्मात्राभ्युदय–प्राणचार में वर्णों, पदों और मन्त्रों के उदय का अनुभव। यह अनुभव साधकों को स्वतः सिद्ध भी है और प्रयत्न साध्य भी है। वर्ण उच्चारण स्वतः सिद्ध है। पर पदों और मन्त्रों को उच्चारण में प्रयत्न की आवश्यकता है अतः ये प्रायत्निक हैं जब कि वर्ण नियत होने से अचयत्नज हैं, कहा है "एकोऽपि वर्णो देवानां वाचकः परिकीर्तितः"। इस 'जयरुद्र' का मन्त्राक्षर 'च' है जिसका ध्यान चिन्तन व मनन चण्डभैरवावेश प्राप्ति में सहायक होता है। क्योंकि चण्डभैरव का मन्त्राक्षर "च" है।

श्री तन्त्रालोकविवेक के अष्टम आह्निक से सम्बद्ध "जयकीर्ति" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "छ"

जयकीर्तिरयं जयताज्जगदम्भोजं विभक्त भुवन दलम्।
रविरिव विकासयति यश्चिदेकनालाश्रयत्वेन॥

जयकीर्ति–जयकीर्ति नामक, अयं–यह रुद्र, जय तात् –विजयशील होवे, जगदम्भोजं– संसार रूपी कमल को, विभक्त– पृथक्-पृथक् (व्याप्त है) भुवन–११८ भुवनों रूपी दलं –पत्रों में (lotus leaves) रविरिव–सूरज की तरह, विकासयति–खिलाता है या

विकसित करता है यः–जो, चित् चिन्मय, एक–अद्वितीय, नालाश्रय त्वेन–कमल नाल का आश्रय होने से।

जगदम्भोज–संसार एक कमल सा है, विभक्तभुवनदल=११८ भुवन इस संसार रूपी कमल के पत्ते हैं। कश्मीर शैव दर्शन के अनुसार ११८ भुवन हैं जिनका विस्तृत वर्णन् सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप ने एक रविवार को तन्त्रालोक पढ़ाते समय "ईश्वर" आश्रम श्रीनगर में इस प्रकार किया था–

कला तत्त्व के पांच भेद हैं–

१. निवृत्तिकला	इसमें १६	भुवन हैं।
२. प्रतिष्ठा कला	इसमें ५६	भुवन हैं।
३. विद्या कला	इसमें २८	भुवन हैं।
४. शान्ता कला	इसमें १८	कुल भुवन हैं।
५. शान्तातीता कला	इसमें	कोई भुवन नहीं है।

कहा भी है– "शान्तातीता त्वभुवनैव॥" (कुल ११८ भुवन हैं)

जो जयकीर्ति नामक रुद्र संसार रूपी कमल के ११८ भुवनों रूपी दलों (leaves) में अलग-अलग व्याप्त है, जो चैतन्यरूपी अद्वितीय कमल नाल का आश्रय होने से सूरज की तरह उसे विकसित करता है, ऐसे "जय कीर्ति" नामक रुद्र की जय जय कार हो॥

इस जयकीर्ति नामक रुद्र का मन्त्राक्षर "छ" है। जिसकी सर्वव्यापकता का चिन्तन करने से उक्त रुद्र के प्रसाद से साधक अनुगृहीत होता है॥

कहा भी है–

अध्वा समस्त एवायं चिन्मात्रे सुप्रतिष्ठितः।
यत्तत्र नहि विश्रान्तं तन्नभः कुसुमायते॥
यह सारा अध्वामण्डल
चिन्मात्र में व्यवस्थित
जो उसमें है वही है
जो उससे भिन्न दिखता
आकाश पुष्प सा वह है।

श्री तन्त्रालोक विवेक के नवम आह्निक से सम्बद्ध "जयावह" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "ज" है–:–

तत्त्व क्रमावभासन विभाग विभवो भुजङ्गमाभरणः।
भक्तजन जया वहतां वहति जयावहो जयति॥

तत्त्वभेद निरूपणकारी तन्त्रालोक के नवम आह्निक के आरंभ मे, श्रीतन्त्रालोक के टीकाकार आचार्य जयरथ ने कहा है कि–

"तनोति सर्वमिति 'तत्' पररूपं तस्य भावः तत्त्वं" अर्थात जो सारे भुवनों का विस्तार करता है वह तत् अर्थात् उत्कृष्ट रूप 'शिव' है। उस 'तत्' शब्द या उत्कृष्ट रूप शिवभाव को तत्त्व कहते है। एवं अनेकत्व में एकरूपता को होना ही तत्त्व है।

इस अर्थ के आधार पर वह तत्-शिव ही शक्ति से लेकर पृथिवी तत्त्व तक पैंतीस तत्त्वों में व्याप्त है और यह शिवतत्त्व छत्तीसवां तत्त्व है।

श्रीतन्त्रालोक के अष्टम आह्निक में "देशाध्वा" में भुवनों के वर्णन करने के पश्चात् उनमें आने वाले तत्त्वों को समझाने के लिए नवम अह्निक के आरम्भ में आचार्य जयरथ ने "जयावह" नामक रुद्र की स्तुति करते हुए कहा है कि–

जो "जयावह" नामक रुद्र देशाध्वा के भुवनों में व्याप्त तत्त्वों के क्रमविभाग का अवबोध कराने में समर्थ है, सांपों से जिसकी देह ढ़की हुई हैं, और अपने भक्तजनों को सदा विजयशील बनाते हैं ऐसे "जयावह" नामक रुद्र की जय कार हो।

तत्त्व क्रम विभाग – अनन्त भुवनों में व्याप्त तत्त्वों का जो क्रम विभाग है, अवभासन विभवः –स्पष्ट करने में जो शक्तिमान् है, भुजङ्गम–सांप आभरणः – जिसके आभूषण हैं, भक्तजन – साधकों को जयावहतां वहति– सदाविजयशील बनाता है अतः जिसका नाम "जयावहः"–जयावह रुद्र है, उसकी जयति– जय जयकार हो॥

इस जयावह नामक रुद्र की साधना के बिना अनन्त भुवनों अथवा निवृत्ति कला से शान्तातीता कला तक व्याप्त ११८ भुवनों में व्याप्त अनन्त तत्व वैचित्र्य के ज्ञान की सम्प्राप्ति असंभव है। अतः इस रुद्र की प्रसादप्राप्ति के लिए श्री तन्त्रालोक के नवम आह्निक का सम्यक् अवबोध अतीव आवश्यक है।

इस रुद्र का मन्त्राक्षर "ज" है अतएव इसका नाम भी "जयावह" है॥ सर्व भुवन व्याप्त तत्त्वों में परिनिष्ठित रहने से इसका चिन्तन साधक को विजयशील बनाता है।

श्री तन्त्रालोक विवेक के दशम आह्निक से सम्बद्ध 'जयमूर्तिः" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर "झ"–

तत्तत्तत्वविभेदन समुद्यतोद्द्योति निशित शूलेकरः
जयति परं जय मूर्तिः संसार पराजय स्फूर्तिः॥

जो जयमूर्ति नामक रुद्र अनन्त विस्तार से पूर्ण उन उन विशेष तत्त्वों के विभेदन में लगे हुए हैं, जो प्रकाशशील है, तीक्ष्णतम है और त्रिशूल को हाथ में लिये हुए हैं, जो संसार की संसरणशीलता को पराजित करने में स्फुरणशील है, ऐसे जयमूर्ति नामक रुद्र की सर्वोत्कृष्टरूपसे जय जय कार हो।

तत्त्वाध्वा के विस्तार में शैव विस्तार का स्वरूप सहज रूप में प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु जनों से प्राप्त माणिक्य सा प्रकाश पुञ्जरूप इस तत्त्वाध्वा का जिस बारीकी से आचार्य ने वर्णन किया कि पाठक भी ज्ञानप्रकाश में अपने को लीन देखता है।

उद्द्योतित-प्रकाशशील। यह तत्त्वाध्वा माणिक्य के रूप में प्रकाश का एक पुंज है। निशित–तीक्ष्णतम अर्थात् बहुत तेज़। शूलकरः – त्रिशूलधारी। यदि निशितशूलकरः को समस्त पद मानेगें तो इस का अर्थ होगा कि जो तेज़ तेगों वाले त्रिशूल को हाथ मे धारण करता है। त्रिशूल की इन तीन तेगों का नाम परा, परापरा और अपरा शैव दर्शन में बताया हैं और बीच वाली तेग के उपरी भाग को परातीता नाम दिया है उसी को कालसंकर्षिणी देवी भी कहते हैं। कहा भी है–

तन्मध्येतु परा देवी दक्षिणे च परापरा।
अपरा वामशृङ्गेतु मध्यशृङ्गोर्ध्वतः शृणु॥
या सा संकर्षिणी देवी परातीता व्यवस्थिता।

इस रुद्र का मन्त्राक्षर "झ" है। इस रुद्र के स्वरूप चिन्तन के फलस्वरूप साधक ज्ञानप्रकाश में लीन होता है॥

श्री तन्त्रालोक विवेक के एकादश आह्निक से सम्बद्ध "जयोत्साह" नामक रुद्र की स्तुति तथा उसका मन्त्राक्षर 'ञ'–

स्वात्म महाभीम रवामर्शन वश शकलिताध्वसन्तानः।
भवदुर्गभञ्जन जयोत्साहो जयताज्जयोत्साहः॥

जिस जयोत्साह नामक रुद्र ने अपने ही महाभयानक शब्दामर्शनके फलस्वरूप विभिन्न अध्वाओं की सन्तति को खण्डशः कर दिया है, अर्थात् भिन्नभिन्न अध्वाओं में व्याप्त भवभेद का ध्वंसन करने में जो तत्पर हैं तथा जिसने संसाररूपी दुर्ग को मिलिया-मेट करने में कमर कसा है ऐसे जयोत्साह नामक रुद्र की जय जय कार हो॥

महाभीम–महा भयानक, रव–शब्द, शकलित–खण्डशः कर दिया, भवदुर्ग–संसार रूपी किले को, जयोत्साहः–कमर कसा है।

इसमें जयोत्साह शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है एक जयोत्साहः का तात्पर्य बद्ध-परिकर है, दूसरे जयोत्साहः का अर्थ जयोत्साह नामक रुद्र है।

इस एकादश अह्निक में कलाध्वा का वर्णन है। जिस अध्वा में एक दूसरे के साथ व्यवच्छेद के तत्त्व विद्यमान हो, जिनके परिणाम स्वरूप हम उन्हें अलग-अलग वर्ग में रखें, वह 'अध्वा' ही कलाध्वा का बोधक है। इसीलिए "शकलित अध्व सन्तानः" शब्द का प्रयोग रुद्रस्तुति में किया गया है।

श्री रुद्रस्तुतिः

भाषानुवादक :
प्रो. मखन लाल कुकिल्

यजुर्वेद के ग्यारहवें अनुवाक की ये दस ऋचायें, जो "सहस्रधा सहस्राणि" से आरम्भ होकर 'ये एतावन्तश्चभूयासः' तक हैं, श्री रुद्र और उसके गणों को समर्पित हैं। हमारे सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप जी को इन दस ऋचाओं और इनसे सम्बद्ध यजुस् जो तीन भागों में विभक्त है, अर्थात् 'नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां' से लेकर 'येषां वर्षं इषवः' तक है, के साथ अतीव मोह था। वे प्रायः इन ऋचाओं को गुनगुनाते रहते थे और अत्यन्त आनन्दमग्न होते थे। सद्गुरु महाराज की आज की ९४ जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके इस प्रियस्तोत्र को हम पाठकों के कल्याण के लिए मालिनी के जन्म-जयन्ती अंक में प्रस्तुत करते हैं। आशा है कि पाठकगण इसके सतत मनन से अवश्य लाभान्वित होंगे।

सहस्रधा सहस्राणि ये रुद्राः अधिभूम्याम्
तेषां सहस्रयोजने अव धन्वानि तन्मसि ॥ १ ॥

Sahasradhā sahasrāṇi ye Rudrāḥ adhibhūmyām /
Teṣāṁ sahasrayojane ava dhanvāni tanmasi //

श्रीरुद्र अनन्य हैं, सनातन सत्य हैं। रुद्रगण श्रीरुद्र के असीम शक्ति और वैभव के प्रतीक हैं जिनसे वे सृष्टि, स्थिति, अनुग्रह, और निग्रह नामक चार प्रकार के कर्म करवाते हैं। ये रुद्रगण सारे प्राणिवर्ग में प्रवेश पाकर कर्मानुसार भलाई और बुराई में उन्हें प्रेरित करते हैं। क्योंकि ये रुद्रगण सर्वव्यापक हैं अतः मन, वाणी और इन्द्रियों से सारे प्राणी इन्हें सदा नमन करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे अपने बाधाओं और विपत्तियों रूपी धनुषों को भक्तों से दूर रखें, साधकों के अन्दर और बाहिर के शत्रुओं का विनाश करें और उन्हें भलीभांति हर प्रकार से सुरक्षित रखें। जिस तरह विनायक, नन्दी, भूत, प्रेत पिशाच आदि अनन्त हैं इसी प्रकार रुद्र गण भी अनेक रूपों में पाये जाते हैं। ये रुद्रगण इस भूमि पर भूमि अधिदेवता के रूप में, सारे जीवों को अपने कर्मों के अनुरूप दण्डित करते हैं। अतः इस स्तोत्र में इन रुद्रगणों से प्रार्थना की जाती है कि वे हमारे नमन, हमारी स्तुति, हमारी आहुतियों को स्वीकार करके अपने धनुष की डोरियों को कस लें, अपने क्रोध को शान्त करें और हमारे लिए कल्याणकारी बनें।

इस भूमि पर जो हजारों प्राणियों को रुलाने वाले रुद्र ठहरे हुए हैं जो असंख्य रूपों में व्याप्त हैं, वे अपने धनुषों को हमसे सहस्रयोजनपर्यन्त–हजारों योजनों तक-अथवा

हजारों मीलों (miles) की दूरी तक दूर रखें और उनकी डोरियां ढ़ीली पड़ी रहें ताकि रुद्रभक्तों पर उनकी छाया तक न पड़े।

तेषां धन्वानि-धनुष प्रतीक (symbol) हैं यहां आधियों और व्याधियों के। शब्दार्थ है– उनके धनुष।

योजन–चार कोस का एक योजन होता है।

१६ मीलों अथवा २२ किलोमीटरों का एक कोस होता है। सहस्रयोजनपर्यन्त से यही अभिप्राय है कि रुद्रभक्त इन आधिव्याधिरूपी धनुषों की छाया से सदा दूर रहें। "अवतन्मसि" से तात्पर्य है कि धनुषों की डोरियां ढ़ीली पड़ी रहें।

रुद्र–शत्रुओं को रुलाने से, तथा कष्ट देने से इन्हें रुद्र कहते हैं।

तेषां सहस्रयोजने अव धन्वानि तन्मसि–ऋचा की यह अर्धाली अनुवाक के दसों ऋचाओं में समान है। अतः प्रत्येक ऋचा के साथ एक समान अर्थ होने के कारण, इसकी व्याख्या प्रथम ऋचा के साथ ही की गई है। अन्य ऋचाओं के साथ नहीं।

ऋचा का तात्पर्य है– Hymn.

इस ऋचा में रुद्रों का वास भूमि पर दर्शाया है।

ये अस्मिन्महत्यर्णवे अन्तरिक्षे भवा अधि।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ २॥

Ye asminmahatyarṇave antarikṣe bhavā adhi /
Teṣām sahasrayojane'va dhanvāni tanmasi //

ये–जो रुद्र अस्मिन्-इस, महति–प्रभावशाली, अर्णवे–सागर में, अन्तरिक्षे–अन्तरिक्ष में (स्वर्ग और धरती के बीच का भाग अर्थात् middle region or inter space)। कई भाष्यकारोंने महत्यर्णवे अन्तरिक्षे को यूँ समझाया है कि जो अन्तरिक्ष महान् सागर के समान प्रभावशाली है उस अन्तरिक्ष में। भवा–जो रुद्रगण, अधि–रहते हैं।

इस अन्तरिक्ष में और प्रभावशाली सागर में अथवा महान् सागर के समान प्रभावशाली अन्तरिक्ष में, जो रुद्र ठहरे हुए हैं वे अपने धनुषों को हजारों योजनों तक हमसे दूर रखें और उनकी डोरियां ढ़ीली पड़ी रहें ताकि रुद्र भक्तों पर उनकी छाया तक न पड़े॥ २॥

इस ऋचा में रुद्रों का वास अन्तरिक्ष और सागर में दर्शाया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ऊपर नीचे सर्वत्र इनका ही साम्राज्य है।

ये नीलग्रीवा:शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमा चराः।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ ३॥

Ye nīlagrīvāḥ śitikanṭāḥ śarvā adhaḥ kṣamā carāḥ /
Teṣām sahasrayojane'va dhanvāni tanmasi //

अधः क्षमा चराः– निचले लोकों में रहने वाले अथवा पाताल लोकों में वास करने वाले, **नीलग्रीवाः**– जिनका कण्ठ (गला) नीला पड़ा है कालकूट विष के कण्ठ पर ही अवरुद्ध होने से। **शितिकण्ठाः**– जिनका कण्ठ से शरीर का निचला भाग सफेद है। इसी अभिप्राय से 'विलोहित' शब्द का भी कहीं-कहीं प्रयोग हुआ है। जैसे– "विकिरिढ विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः॥"

शर्वाः– रुद्रगण।

कालकूट विषपान से नीलीगर्दन वाले और शरीर के अन्य भागों पर (कण्ठ से नीचे) सफेद वर्ण की छाया वाले जो शर्व नामक रुद्र पृथ्वी पर या नीचे पाताल लोकों में विचरण करते रहते हैं, वे अपने धनुषों को हजारों योजनों तक हमसें दूर रखें और उनकी डोरियां ढ़ीली पड़ी रहें॥

इन मन्त्रों के मनन से यह स्पष्ट होता है कि रुद्र गणों का वास जिन-जिन स्थानों पर है उन-उन स्थानों का निर्देश इन मन्त्रों में अलग-अलग रूप से हुआ है।

इस ऋचा में रुद्रों का वास पाताल लोक बताया गया है।

ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः दिवं रुद्राः उपश्रिताः।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ ४॥

Ye nīlagrivāḥ śitikanṭāḥ divaṁ rudrāḥ upaśritāḥ /
Teṣāṁ sahasrayojane'va dhanvāni tanmasi //

रुद्राः दिवं उपश्रिताः– जो रुद्र स्वर्ग में वास करते हैं जो रुद्र स्वर्ग लोक वासी हैं वे इन्द्र सम्बन्धित रुद्र हैं। ये रुद्र स्वर्ग में सबों का शासन करते हैं।

नीलग्रीवा :– नीली गरदनवाले, **शितिकण्ठाः**– सफेद कण्ठवाले, अथवा कण्ठ से नीचे सफेद वर्ण के शरीरवाले।

जो नीली गर्दन और सफेद कण्ठवाले रुद्रगण द्युलोक में अवस्थित हैं वे अपने धनुषों को हजारों योजनों तक हमसे दूर रखें और उनकी डोरियां ढ़ीली पड़ी रहें॥

"उपाश्रिताः" भी पाठान्तर है। इस ऋचा में रुद्रों का वास द्युलोक बताया गया है।

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जराः नीलग्रीवाः विलोहिताः।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मासि॥ ५॥

Ye vṛkṣeṣu śaspiñjarāḥ nīlagrīvāḥ vilohitāḥ /
Teṣāṁ sahasrayojane'va dhanvānī tanmasi //

ये- जो रुद्र, शष्पिञ्जराः– जिन की हरियाली कोमल घास सी है, विलोहिताः– जिन का वर्ण लाल है, इस का अर्थ कई स्थानों पर सफेद वर्ण भी किया गया है, वृक्षेषु–वृक्षों पर वास करने वाले। 'सस्पिञ्जराः'' भी पाठान्तर है।

हरित वर्ण वाले, नीली गर्दन से युक्त, और तेजोमय शरीर धारी जो रुद्रगण वृक्षों में आश्रय करके स्थित हैं वे अपने धनुषों को हजारों योजनों तक हमसे दूर रखे और उनकी डोरियां ढीली पड़ी रहे॥

इस ऋचा में रुद्रों का वास वृक्षों में दर्शाया है। वैसे लोक में भी यह धारणा है कि वृक्षों के नीचे मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि इनमें रुद्रगणों का वास होता है। कई लोग दुष्कर्म करने से अथवा वृक्षों की अवहेलना करने से इन वृक्षस्थित भूतगणों के क्रोध के पात्र बन जाते हैं और वे इनकी आत्माओं पर पूर्ण रूप से हावी हो जाते हैं।

इस ऋचा में रुद्रगणों का वर्ण हरे घास का सा लुभावना दिखाया गया है जो दूर से ही आंखों को शीतलता प्रदान करता है॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ ६॥

Ye bhūtānāmadhipatayo viśikhāsaḥ kapardinaḥ /
teṣāṁ sahasrayojane'va dhanvāni tanmasi //

ये भूतानां अधिपतयः – जो रुद्रगण भूतवर्ग के अधिपति माने जाते हैं, विशिखासः – जिनके सिर केश रहित हैं अथवा जो गंजे हैं, कपर्दिनः– जो जटा जूटों को धारण करने वाले हैं।

जो रुद्र भूतगणों के अधिपति बने हुए अथवा जो रुद्र प्राणियों के अधिपति हैं, जो केशरहित या गंजे सिरों वाले हैं तथा जो जटा जूट से युक्त हैं वे अपने धनुषों को हज़ारों योजनों तक हमसे दूर रखें और उनकी डोरिया ढीली पड़ी रहें॥

''भूतानां अधिपतयः'' को सारे व्याख्याकारों ने रुद्रों के विशेष कार्य वाहक स्वीकारा है। पर कई व्याख्याकार इन्हें तत्त्वों के अधिपति मानते हैं।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ ७॥

Ye'nneṣu vividhyanti pātreṣu pibato janān /
Teṣāṁ sahasrayojane'va dhanvāni tanmasi //

ये–जो रुद्र, **अन्नेषु**-अन्नों में, **जनान् विविध्यन्ति**–प्राणियों को विशेष करके प्रताड़न करते हैं अर्थात् रोगों से उन्हें आक्रान्त करते हैं, और **पात्रेषु पिबतः** =पात्रों में तरल पदार्थों का सेवन करने वालों को रोगग्रस्त करते हैं वे अपने धनुषों को हजारों योजनों तक हम से दूर रखे और उनकी डोरियां ढ़ीली पड़ी रहें॥

इस ऋचा में, धर्म, आयुर्विज्ञान और शारिरिक शौच का असामान्य रूप से समन्वय हुआ है, परिणाम स्वरूप उन प्रमुख विधियों पर प्रकाश डाला गया है जिनसे संसार में विनाश-कर्म का आयोजन, अधिक या अल्प आहार के सेवन से, गन्दले जल के उपयोग से, अथवा विषाक्त पदार्थों के सेवन से, हो रहा है। ये रुद्रगण अन्नों मे या तरल पदार्थों में अन्तर्हित रहते हैं और नास्तिकों को दैहिक प्रक्रिया के नियमों के सामञ्जस्य से दूर रखते हैं।

विविध्यन्ति–शारीरिक संरक्षण की क्रिया को अनियमितता से प्रभावित करते हैं। अर्थात् व्यक्तिगत पापों के परिणाम स्वरूप आधिव्याधियों से प्राणियों का उत्पीड़न करते हैं।

'यह ऋचा खाने पीने की प्रक्रिया में शुद्धता पर अधिक बल देती है। श्री गीता जी में भी इसी आधार पर सात्त्विक, राजसिक और तामसिक आहारों की ओर संकेत किया गया है।

इस ऋचा में रुद्रों का वास अन्नों और जलपान के पात्रों में दर्शाया है।

ये पथां पथिरक्षयः ऐलबृदा आयुर्युधः।
तेषां सहस्त्र योजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ ८॥

Ye pathāṁ pathirakṣayaḥ ailalvṛdā āyuryudhaḥ /
Teṣāṁ sanasra yojane'va dhanvāni tanmasi //

ये– जो रुद्र, **पथां** – मार्गों के (लौकिक तथा वैदिक मार्गों के) स्वामी हैं, **पथिरक्षयः** – मार्गों की संरक्षा में लीन हैं, **ऐलबृदाः** – अन्नदाता अथवा प्राणियों को अन्न से पुष्ट करने वाले, **आयुर्युधः** – जीवनभर युद्ध करने में तत्पर हैं।

जो रुद्र मार्गों के स्वामी हैं तथा राहियों को रास्ते में पूरी तरह से सुरक्षित रखते हैं, जो अन्नदाता हैं तथा जीवनपर्यन्त युद्ध करने में सक्षम हैं, वे अपने धनुषों को हजारो योजनों तक हमसे दूर रखें और उनकी ड़ोरियां ढ़ीली पडी रहें॥

पथि रक्षयः=रुद्र तो सांसारिक मार्गों के साथ-साथ धार्मिक परम्पराओं के भी

संरक्षक हैं अत एव धार्मिक मार्गों के अधिदेवता होने से वे प्राणियों को उंन मार्गों पर सुप्रतिष्ठित करते हैं।

पथां के स्थान पर **पथीनां** भी पाठान्तर है। **ऐलबृदाः** के स्थान पर **ऐढ़मृदा** भी पाठान्तर है।

आयुर्युधः के स्थान पर "**यव्युधः**" पाठान्तर है, जिसका तात्पर्य है कि जो रुद्र शत्रुओं के साथ मुकाबला करने में समर्थ हैं॥

इस ऋचा में रुद्रों का वास लौकिक मार्गों पर दर्शाया है॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ताः निषङ्गिणः।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ ९॥
Ye tīrthāni pracaranti sṛkāhastāḥ niṣañgiṇaḥ /
Teṣāṁ sahasrayojanc'va dhanvāni tanmasi //

ये - जो रुद्र, **तीर्थानि प्रचरन्ति**–धार्मिक व पवित्र स्थानों को अपनी उपस्थिति से प्रतिक्षण सुशोभित करते हैं, **सृकाहस्ताः** –माला हाथ में लिये, **निषङ्गिणः**=लम्बीं तलवार बांधे।

जो रुद्रगण, माला हाथ में लिये और "तलवार बांधे धार्मिक व पवित्र स्थानों को अपनी उपस्थिति से प्रतिक्षण सुशोभित करते हैं, वे अपने धनुषों को हजारों योज़नों तक हमसे दूर रखे और उनकी डोरिया ढ़ीली पड़ी रहें॥

इस ऋचा से यह ज्ञात होता है कि रुद्र गण ही धार्मिक स्थलों के वास्तविक अधिदेवता होते हैं अतः इन स्थानों पर ये सदा ठहरते हैं और इन स्थलों पर आने वाली साधारण जनता को अनुगृहीत करते हैं।

इस ऋचा में रुद्रों का वास तीर्थ स्थानों पर बताया गया है।
सृकावन्तः भी पाठान्तर है॥

ये एतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ १०॥
Ye etāvantaśca bhūyāṁsaśca diśo rudrā vitasthire /
Teṣāṁ sahasrayojane'va dhanvāni tanmasi //

ये–जो, **रुद्राः**–रुद्र, **एतावन्तश्च भूयांसश्च** जिनका अबतक उल्लेख किया गया और जो उन सब रुद्रों के भी अधिपति हैं,

दिशो – दसों दिशाओं में, या उनसे भी अधिक दिशाओं में, **वितस्थिरे**– आश्रित

है अर्थात् उन पर अपना प्रभुत्व जमाये बैठे हैं।

वे रुद्रगण जिनका अब तक उल्लेख किया गया तथा जो रुद्रगण उन सबों के भी सर्वेसर्वा है, और जो सारी दिशाओं और उपदिशाओं में अपना प्रभुत्व जमाये बैठे हैं वे अपने धनुषों की डोरियां हमारे लिए सदा ढ़ीली रखें और इन अपने धनुषों को हजारों योजनों तक हमसे दूर रखें॥

एतावन्तश्च भूयांसश्च के कहने से यह स्पष्ट होता है कि रुद्रों की संख्या अनन्त है और प्रत्येक रुद्र का अपना-अपना कर्मक्षेत्र नियत है।

इस ऋचा में रुद्रों का वास दिशाओं और उपदिशाओं में दर्शाया गया है।

वितस्थिरे के स्थान पर वितिष्ठिरे भी पाठान्तर है।

यजुस्

ऊँ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्ष इषवः तेम्यो दश प्राचीर्दशदक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः तेम्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु तेनो मृड़यन्तु तेयं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥

ये–जो रुद्र, दिवि–द्युलोक में (heaven) हैं **–येषां** – जिन रुद्रों, के **इषवः** – बाण, वर्ष– वृष्टि ही है, **तेम्यो रुद्रेम्यो नमोऽस्तु** – उन रुद्रों के लिए नमस्कार हो। **तेम्यः दश प्राचीः** – उन रुद्रों के लिए दोनों हाथों की दस अंगुलियां अर्थात् दोनों हाथ जोड़कर, **प्राचीः**–पूर्व की ओर (east) मुंह करके अपने शरीर को उनके सम्मानार्थ झुकता हूँ, **दश दक्षिणा**–दोनों हाथों की, **दश**–दस अंगुलियां जोड़कर **दक्षिणा**–दक्षिण दिशा (south) की ओर मुंह करके, झुकता हूँ, **दश प्रतीची**–दोनो हाथों की दस अंगुलियों जोड़कर पश्चिम दिशा (west) की ओर मुंह करके अपने को झुकता हूँ,

दश उदीचीः–दोनों हाथ जोडकर उत्तर (North) दिशा की ओर मुंह करके झुकता हूँ, दशोर्ध्वाः–(upwards) दोनों हाथ जोडकर ऊपर की आर मुंह करके झुकता हूँ, तेम्यो नमोऽस्तु–मैं उन्हें अपने मनसे भी प्रणाम करता हूँ, ते नोऽवन्तु–वे रुद्र हमारी रक्षा करें, ते नो मृडयन्तु–वेरुद्र हमें प्रसन्नता प्रदान करें अर्थात् हमें सुखी रखें, यंद्विष्मः – जिसके साथ हम वैर रखते हैं, च यः नः द्वेष्टि–और जो हमसे वैर रखता है, उसको, हम, एषां-इन रुद्र गणों के जम्भे–जंभाई लेते समय खोले हुए मुंह में, दध्मः – डाल देते हैं।

वृष्टि ही है द्युलोक में जिन रुद्रों के बाण अर्थात् वर्षा ही बाणों का सा प्रयोजन सिद्ध करती है उन रुद्रों को नमस्कार हो। हम उन रुद्रों के लिए दोनों हाथ जोड़कर

उनके सम्मानार्थ पूर्व की ओर, तथा दक्षिण दिशा की ओर पश्चिम दिशा की ओर, उत्तर दिशा की ओर, अञ्जलि मुद्रा में ऊपर की ओर, मुंह करके झुकते हैं। हम उन्हें अपने मन से भी प्रणाम करते हैं। वे रुद्र हमारी रक्षा करें वे हमें प्रसन्नता प्रदान करें। जिसके साथ हम वैर रखते है और जो हमारे साथ शत्रुता करने में अड़ा हुआ है, उसे हम जम्भाई लेते समय पूरी तरह से खोले हुए इन रुद्रगणों के मुंह में धर लेते हैं।

यजुर्वेद का यह मन्त्र एक ही है पर इसे तीन मन्त्रों में प्रस्तुत किया गया है। उनमें प्रथम मन्त्र द्युलोक में रहने वाले रुद्रगणों को समर्पित है। दूसरा मन्त्र अन्तरिक्ष में रहने वाले रुद्रगणों को समर्पित है और तीसरा मन्त्र पृथिवी पर रहने वाले रुद्रगणों को समर्पित है। इन मन्त्रों की शब्दसंरचना एक समान है। शब्दार्थ और भावार्थ मुख्यरूप से एक ही है। केवल विशिष्ट स्थान पर अवस्थित रुद्रगणों को द्योतित करने वाला शब्द ही मन्त्र को एक दूसरे से अलग करता है। जैसे उपरोक्त ऋचा में "दिवि" शब्द और **'वर्षम्'** शब्द है। दूसरी ऋचा में **'अन्तरिक्ष'** और **'वात'** शब्द है और तीसरी ऋचा में **'पृथिव्यां'** और **'अन्न'** शब्द हैं। इसी आधार पर इस एक ही यजुस् को तीन मन्त्रों में विभक्त किया गया है। विशेष शब्दों को छोड़कर अभिप्रेतार्थ एक समान है। अतः इन मन्त्रों का अलग स्पष्टीकरण नहीं किया है केवल विशेष शब्दों के मुख्यार्थ का उल्लेख - किया है।

द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवी लोक की भिन्न-भिन्न दिशाओं में, एक ही यजुस् में तीन विभिन्न लोकों में रहने वाले विशेष रुद्रगणों को, साधक अपनी प्रसन्नता के लिए और अपने शत्रुओं की तहसनहस करने के लिए नतमस्तक प्रार्थना करता है।

दिवि–द्युलोक में (heaven) अन्तरिक्षे–अन्तरिक्ष लोक में (middle region or space) पृथिव्यां–भूलोक में (earth)

वर्षमिषवः– वर्षा ही स्वर्ग में रहने वाले इन रुद्रों के बाण है। इन्हीं वर्षा रूपी बाणों से ये प्राणियों को अत्यधिक वर्षा से पीडित करते है अथवा कमवर्षा से खेतों को सुखाकर तरसाते है, अथवा सूखे से या अकस्मात् ओले बरसाने से इनकी सभी योजनाओं पर पानी फेरते हैं।

'दश' शब्द का प्रयोग इन तीनों ऋचाओं में पांच-पांच बार हुआ है अर्थात् दश प्राचीः, दश दक्षिणा दश प्रतीचीः, दश उदीचीः दश ऊर्ध्वाः। 'दश' का अर्थ है 'दस' अर्थात् दोनों हाथों को मिलाकर हाथों की अंगुलियां दस बनती हैं। दश ऊर्ध्वाः से अञ्जलि मुद्रा की ओर संकेत है।

यं द्विष्मः से तात्पर्य है कि जिस व्यक्ति के साथ हमारा सम्बन्ध ठीक नहीं है अर्थात् जिसे हम नहीं चाहते हैं।

यश्चनो द्वेष्टि–जो हमारे साथ शत्रुता रखने में अड़ा हुआ हैं।

तं–उस व्यक्ति को।

वो–आप रुद्रगणों के। **जम्भे**–जंभाई लेते समय पूरी तरह खोले गये मुंह में।

दध्मः–डालते हैं।

इन रुद्रगणों के असंख्य आयुध है इसीलिए "सर्वप्रहरणायुधः" भी सहस्त्रनामों में एक नाम है।

'दधामि' भी दध्मः के स्थान पर पाठान्तर है। दधामि में एकवचन है पर दध्मः में बहुवचन हैं।

ते नोऽवन्तु– वे हमारी रक्षा करें। कई लौकिक प्रतियों में यह वाक्यांश मिलता नहीं, यद्यपि यजुर्वेद में यह पूरी तरह से मिलता है।

जम्भे दधामि–इस का आलंकारिक अर्थ यह है कि मेरे विरुद्ध की गई मेरे शत्रुओं की सारी योजनायें विफल हों अथवा मेरे आन्तरिक शत्रु काम, क्रोध, लोभ और मोह किसी भी प्रकार से मेरे पर हावी न हो, अथवा मेरी सारी वृत्तियां शान्त हों जो मुझे पापकर्मो की ओर प्रेरित करती हैं। स्मरण रहे इन्द्रिय वृत्तियां और इन्द्रिय शक्तियां दो भिन्न हैं। एक का नाम है (organic organs) दूसरे को नाम (organic energies) हैं। एक साधारण है दूसरी असाधारण है। इन्द्रिय शक्तियों के अधिपति को ही "वीरेश" कहते हैं॥

ऊँ नमोऽस्तु रुद्रेम्यो ये अन्तरिक्षे येषां वात इषवः तेम्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दशप्रतीची र्दशोदीची र्दशोर्ध्वाः। तेम्यो नमोऽस्तु तेनोऽवन्तु, ते नो मृडयन्तु ते यंद्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दद्मः॥

ये–जो रुद्र, **अन्तरिक्षे**-अन्तरिक्ष में (middle region) **येषां**–जिनके, **वात इषवः**–वायु ही बाण है। वायु को बाण कहने का तात्पर्य यह है कि ये रुद्र पापियों की श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया को अनियमित करके उन्हें से आक्रान्त करते हैं या दमघुटने से बेचैन बनाते हैं अथवा प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान नामक पंच प्राणवायुओं में विषमता के कारण ये रुद्रगण पापियों का जीना हराम करते हैं और सदा किसी न किसी बीमारी से इन्हें व्याकुल बनाते हैं।

"शेष व्याख्या तथा शब्दार्थ पूर्ववत् है। अतः पुनः यहां उसको दोहराया नहीं गया है॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषां अन्नं इषवः तेभ्यो दश प्राचीर्दशदक्षिणा, दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽस्तु तेनोऽवन्तु तेनो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दद्मः॥

ये–जो रुद्र, पृथिव्यां–इस धरती पर, येषां–जिनके, **अन्नं इषवः**– बाण, अन्न है। अन्न को बाण कहने का तात्पर्य यह है कि ये रुद्र पापियों को या नास्तिकों को अशुद्ध अन्न खिला कर उनकी वृत्ति को बिगाड़ते हैं। उन्हें सदा अजीर्णता के रोगी बनाते हैं, अथवा पापकर्मों के गुरुत्व के कारण उन्हें अन्न के लिए तरसाते है अथवा क्षुधा से तडपाते हैं, अथवा कईयों को अन्न चुराने के कार्य में लगाते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे पकड़े जाते हैं और दण्ड के भागी बनते है।

शेष व्याख्या तथा शब्दार्थ पूर्ववत् है। अतः पुनः यहां दुहराया नही गया है॥

यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो वनस्पतिषु।
यो रुद्रो विश्वा भुवनाविवेश तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु देवाः॥

हे देवगणो! उस रुद्र के प्रति अपने को समर्पित करो जो रुद्र अग्नि में विद्यमान है, जो रुद्र जल में विद्यमान है, जो रुद्र सारी ओषधियों में (herbs) सारे वृक्षों में अथवा सारी हरियाली में विद्यमान है और जो रुद्र ११८ भुवनों में व्याप्त है॥

कहा भी है कि तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत् अर्थात् इस सारे ब्रह्माण्ड की सृष्टि करके पुनः ब्रह्माण्ड के समस्त प्रपञ्च में परमशिव समाविष्ट हुए।अतः ब्रह्माण्ड का कण-कण उसी परमशिव का रूप है।

देवाः बाद में जोडा गया शब्द है यजुर्वेद में देवाः नही है।

चित्सूर्यऔर दिनपति भगवान् की परिपूर्णता तथा अनवच्छिन्नता दोनों हैं। 'परिपूर्णता' से युक्त उसे कह सकते हैं, जो परिपूर्ण तथा अपूर्ण दोनों ही हो। जो केवल परिपूर्ण हो और अपूर्ण न हो, उस को परिपूर्ण नहीं कह सकते हैं। परिपूर्णता तथा अनवच्छिन्नता परमात्मा की विश्वाकारता में ही लागू हो सकती है। इस लिए स्थूल, सूक्ष्म, निर्गुण आदि जगद्रूपता से ही प्रभु परमादित्य की स्तुति की गई है।

स्वामी लक्ष्मण जू महाराज

ISHWARASHRAM TRUST

ADMINSTRATIVE OFFICE : CANAL ROAD, JAMMU.

ATTENTION PLEASE

"I offer my apology for giving incorrect information (though unintentionally) about the authorship of the two poems viz (कौन है तथा हम हार बैठे) published in the Jan. 2001 issue of Malini. These, in fact were handed over to me by very close dedicated disciple of Gurudev sometime in seventees, whose name, as desired by him, I cannot mention here. I again feel sorry for the same."

Dated :— 21.4.2001 Sd/- **S.N. Saproo**

A Member of The Board of Editors of Malini

Resolution

The Members of the Trust and the disciples/devotees of Ishwar Swaroop Swami Laksman Joo Maharaj, met in Ishwar Ashram Bhawan Jammu on 21st of April 2001, and condoled the sad demise of the following deciples/ devotees of Guru Maharaj:

1. Sh. P.N. Koul younger brother of Smt. Radhika Rani Raina/ maternal uncle of s/s I.K Raina, S.K. Raina and Vijaya Laxmi Munshi. He was an ardent devotee of Swami Ji Maharaj.
2. Smt. Meenavati Wali alias Uma Moza, elder sister of Smt. Kshema Jee Moza. She was a disciple of Swami Ji Maharaj.
3. Sh. Brij Mohan Saproo, a very close disciple/devotee of Swami Ji Maharaj and immensely loved by Him;
4. Smt. Sham Rani Badam, who was a disciple of Sushri Sharika Devi Ji and an ardent devotee of Guru Maharaj.
5. Sh. Triloki Nath Malla husband of Smt. Mohini Malla. He was a disciple of Swami Ji Maharaj.
6. Miss Anjali Muju D/o Sh. Makhanlal Muju and Smt. Mana Muju. She left this world in her prime youth, She was an ardent devotee of Guru Maharaj.

All the members, who participated in this extraordinary meeting, prayed to Gurudeva to bestow eternal peace to the departed souls and give strength to all the bereaved families.

Similar condolence meetings were held in Srinagar ashram, and in Delhi kendra.

Dated—21.4.2001

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट

(ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज द्वारा स्थापित)

- गुप्तगङ्गा इश्बर (निशात) श्रीनगर-१९१०२१
- महेन्द्र नगर, कनाल रोड, जम्मू-१८०००२
- ५-R/D सरिता विहार, नई दिल्ली-११००४४

वार्षिक त्योहार व महोत्सव - २००१-०२

वर्ष २००१

जुलाई ५	गुरुवार	श्रीगुरुपूर्णिमा
अगस्त ४	शनिवार	श्रावणपूर्णिमा
अगस्त १२	रविवार	जन्माष्टमी
सितम्बर ४	मंगलवार	पितृपक्ष जग स्वामी महताबकाक जी महाराज
सितम्बर ५	बुधवार	पितृपक्ष जग सुश्री शारिका देवी जी
सितम्बर ६	गुरुवार	सद्गुरु महाराज की वार्षिक निर्वाण जयन्ती
सितम्बर १६	रविवार	पितृपक्ष जग स्वामी रामजी महाराज
नवम्बर १९	सोमवार	स्वामी महताबकाक जी महाराज जन्म जयन्ती
दिसम्बर १६	रविवार	सुश्री शारिका देवी जन्म जयन्ती

वर्ष २००२

जनवरी १०	गुरुवार	स्वामी रामजी महाराज जन्म जयन्ती
फरवरी १०	रविवार	वार्षिक जग स्वामी रामजी महाराज
मार्च १	शुक्रवार	वार्षिक जग सुश्री शारिकादेवी जी
मार्च ११	सोमवार	महाशिवरात्रि
मार्च १५	शुक्रवार	वार्षिक जग स्वामी महताबकाक जी महाराज

श्री इन्द्र कृष्ण रैणा
सचिव
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट
श्रीनगर, जम्मू, दिल्ली